भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् के अनुसंधान का आर्थिक प्रभाव

भा.कृ.अनु.प.-राष्ट्रीय कृषि आर्थिकी एवम् नीति अनुसंधान संस्थान
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद्

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् के अनुसंधान का आर्थिक प्रभाव

भा.कृ.अनु.प.—राष्ट्रीय कृषि आर्थिकी एवम् नीति अनुसंधान संस्थान
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद्
नई दिल्ली

संकलन एवं संपादन

संत कुमार एवं सुरेश पाल, भा.कृ.अनु.प.–एनआईएपी, नई दिल्ली

प्रमुख अनुसंधान दल

अंकिता कांडपाल, वैज्ञानिक, भा.कृ.अनु.प.–एनआईएपी, नई दिल्ली
ए. सुरेश, प्रधान वैज्ञानिक, भा.कृ.अनु.प.–सीआईएफटी, कोच्चि
द्वैपायन बर्धन, प्रधान वैज्ञानिक, भा.कृ.अनु.प.–आईवीआरआई, बरेली
किरण कुमार, वैज्ञानिक, भा.कृ.अनु.प.–एनआईएपी, नई दिल्ली
प्रमोद कुमार, प्रधान वैज्ञानिक, भा.कृ.अनु.प.–आईएआरआई, नई दिल्ली
पी. मुरली, वरिष्ठ वैज्ञानिक, भा.कृ.अनु.प.–एसबीआई, कोयम्बतूर
आर. राजू, वैज्ञानिक, भा.कृ.अनु.प.–सीएसएसआरआई, करनाल
आर.एस. सिंह, प्रधान वैज्ञानिक, भा.कृ.अनु.प.–सीआईएई, भोपाल
श्रीनिवास मूर्ति डी, प्रधान वैज्ञानिक, भा.कृ.अनु.प.–आईआईएचआर, बंगलुरू

मुद्रण :
नेशनल प्रिन्टर्स, बी–56, नारायणा इंडस्ट्रियल एरिया, फेज–II, नई दिल्ली – 110 028 फोन : 011 – 42138030, 09811220790

विषय सूची

आमुख v

आभार vii

1. भा.कृ.अनु.प. द्वारा निवेश और समुच्चय आर्थिक लाभ 1

2. आर्थिक प्रभाव–एक झलक 3

3. नीतिगत अनुसंधान का प्रभाव 4

4. चावल की किस्में

पूसा बासमती 1121 5

सीएसआर 30 : लवण सहिष्णु बासमती 6

सीएसआर 36 : लवण सहिष्णु चावल 7

5. गेहूँ और सरसों की किस्में

एचडी 2967 (पूसा सिंधु गंगा) गेहूँ 8

केआरएल 210 : लवण सहिष्णु गेहूँ 9

पूसा मस्टर्ड 25 (एनपीजे–112) 10

6. गन्ना की किस्में

सीओ–0238 (करण) : गन्ना की किस्म 11

सीओ–86032 (नैना) : गन्ना की किस्म 12

7. फल और सब्जियाँ

कुफरी पुखराज : आलू की किस्म 13

अनार : फूले भगवा 14

अंगूर : डॉगरिज मूलवृंत 15

काजू : साफ्टवुड कलम लगाना 16

सिट्रस : प्ररोह–शीर्ष कलम लगाना 17

अर्का रक्षक और अर्का सम्राट : टमाटर के संकर 18

8. पशु स्वास्थ्य और डेरी

सजीव क्षीणीकृत पीपीआर टीका 19

भा.कृ.अनु.प.–आईवीआरआई क्रिस्टोस्कोप 20

टीकों और नैदानिकी के माध्यम से पशुधन में रिंडरपेस्ट का उन्मूलन 21

दूध में मिलावट की शीघ्र जाँच 22

9. मात्स्यिकी

सिफ्ट महाजाल 23

मत्स्यन पोत 24

जयंती रोहू मछली 25

खुले सागर में पिंजरा मत्स्य पालन 26

10. प्राकृतिक संसाधन प्रबंधन

संरक्षण कृषि 27

हैप्पी सीडर : फसल अपशिष्ट का स्वस्थाने प्रबंध 28

भा.कृ.अनु.प. – रबड़ के लचीले चैक बांध 29

मृदा परीक्षक 30

11. फार्म यांत्रिकी

धान की सीधी बिजाई वाला उन्नत बुवाई यंत्र (ड्रम सीडर) 31

मानव चलित कोनो – निराई–गुड़ाई यंत्र 32

झुकी प्लेट वाला रोपाई यंत्र/बीटी कपास रोपाई यंत्र 33

परिशिष्ट 34

आमुख

भारत की राष्ट्रीय कृषि अनुसंधान प्रणाली को देश की खाद्य सुरक्षा सुधारने, कृषि के टिकाऊपन को कायम रखने तथा गरीबी को मिटाने में उल्लेखनीय योगदान के कारण पूरे विश्व में सराहा गया है। उन्नत प्रौद्योगिकी से प्रेरित कृषि विकास के अनेक ऐसे आनुभविक प्रमाण हैं जिनसे खाद्य पदार्थों के मूल्यों में कमी लाते हुए गरीबों को लाभ पहुँचाया गया है। ये योगदान भा.कृ.अनु.प. के नेतृत्व तथा कार्यनीतिपरक सहयोग के माध्यम से दिए गए हैं। तथापि, हाल की प्रौद्योगिकीय खोजों का प्रभाव उतना स्पष्ट नहीं है। इस अंतराल को पाटने के लिए भा.कृ.अनु.प.–राष्ट्रीय कृषि आर्थिकी एवम् नीति अनुसंधान संस्थान ने पिछले दो दशकों में भा.कृ.अनु.प. के संस्थानों द्वारा विकसित कुछ चुनी हुई प्रौद्योगिकियों के आर्थिक प्रभावों के मूल्याँकन हेतु कार्य आरंभ किया है। मुझे विश्वास है कि यह प्रकाशन देश में कृषि अनुसंधान हेतु प्रदान की जाने वाली सार्वजनिक आर्थिक अनुदान को न्यायसंगत ठहराते हुए नीति निर्माताओं तथा अन्य हितधारकों की आवश्यकताओं को पूरा करने में सफल होगा।

त्रि. महापात्र

(त्रिलोचन महापात्र)
सचिव, कृषि अनुसंधान एवं शिक्षा विभाग तथा
महानिदेशक, भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद्

मार्च 2020
नई दिल्ली

आभार

भा.कृ.अनु.प. की प्रमुख अनुसंधान उपलब्धियों के आर्थिक प्रभाव पर अध्ययन का कार्य भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् के निर्देश से आरंभ किया गया था। किसानों के खेतों पर उल्लेखनीय प्रभाव डालने वाली कुछ चुनी हुई प्रौद्योगिकियों पर भा.कृ.अनु.प.–राष्ट्रीय कृषि आर्थिकी एवम् नीति अनुसंधान संस्थान (एनआईएपी) द्वारा इनके प्रभावों के प्रमाण भा.कृ.अनु.प. के संस्थानों से एकत्र किये गये। विभिन्न संस्थानों के अर्थशास्त्रियों का एक मुख्य अनुसंधान दल गठित किया गया, ताकि पारस्परिक सहयोग से प्रभाव मूल्याँकन कार्य को किया जा सके। अनेक सलाहकार बैठकें आयोजित हुईं तथा राष्ट्रीय कार्यशाला में परिणामों पर चर्चा हुई। संस्थान तथा मुख्य दल की ओर से मैं डॉ. त्रिलोचन महापात्र, सचिव, कृषि अनुसंधान एवं शिक्षा विभाग तथा महानिदेशक, भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद का अत्यंत आभारी हूँ कि उन्होंने एनएआईपी को यह उत्तरदायित्व सौंपा। मैं भा.कृ.अनु.प. के सभी उप–महानिदेशकों तथा निदेशकों का उनके सहयोग के लिए आभार व्यक्त करता हूँ। मैं मुख्य दल के सदस्यों संत कुमार, श्रीनिवास मूर्ति डी, प्रमोद कुमार, द्वैपायन बर्धन, आर.एस. सिंह, ए. सुरेश, अनिल कुमार दीक्षित, पी. मुरली, किरण कुमार और अंकिता कांडपाल को उनके द्वारा किए गए उत्तम कार्य के लिए विशेष धन्यवाद देना चाहूँगा। मुझे आशा है कि इस प्रकाशन में उपलब्ध कराए गए प्रमाण नीति–निर्माताओं एवं अन्य हितधारकों के लिए उपयोगी सिद्ध होंगे।

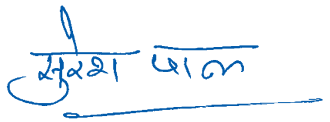

(सुरेश पाल)
निदेशक
भा.कृ.अनु.प.–राष्ट्रीय कृषि आर्थिकी एवम् नीति अनुसंधान संस्थान

मार्च 2020
नई दिल्ली

भा.कृ.अनु.प. द्वारा निवेश और समुच्चय आर्थिक लाभ

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् (भा.कृ.अनु.प.) कृषि एवं किसान कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार के अंतर्गत एक स्वायत्तशासी निकाय है। इसकी स्थापना 16 जुलाई 1929 को देश में कृषि अनुसंधान एवं शिक्षा में समन्वयन, मार्गदर्शन और प्रबंधन के उद्देश्य से की गई थी। वर्ष 2019 में, इसके अंतर्गत 113 अनुसंधान संस्थान और 75 राज्य कृषि विश्वविद्यालय हैं जो पूरे देशभर में फैले हुए हैं। भा.कृ.अनु.प. में वर्ष 2019 में देश में वैज्ञानिकों की स्वीकृत संख्या (6500) सबसे अधिक थी।

केन्द्र तथा राज्य दोनों ही सरकारें देश में कृषि अनुसंधान एवं शिक्षा के लिए नियमित रूप से धनराशि उपलब्ध कराती हैं तथा भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् को केन्द्र सरकार से ब्लॉक अनुदानों के माध्यम से धनराशि प्रदान की जाती हैं। भा.कृ.अनु.प. को भारत सरकार द्वारा 1999–00 में 2000 करोड़ रुपये की धनराशि प्रदान की गई थी जोकि वर्ष 2018–19 में बढ़कर 4,909 करोड़ रुपये हो गई (वर्ष 2011–12 के मूल्यों पर)। इस प्रकार इसमें लगभग 1.5 गुनी बढ़ोत्तरी हुई। उपरोक्त अवधि के दौरान इसमें 5 प्रतिशत से अधिक वृद्धि दर्ज की गई (चित्र 1)। वर्ष 2019–20 में यह धनराशि 8,300 करोड़ रुपये (सांकेतिक/अंकित मूल्य पर) हो गई।

विश्व में सबसे बड़ी अनुसंधान प्रणाली होने के बावजूद भारत में अन्य विकासशील देशों की तुलना में कृषि अनुसंधान पर होने वाला निवेश अपेक्षाकृत कम है। वर्तमान में भारत में कृषि

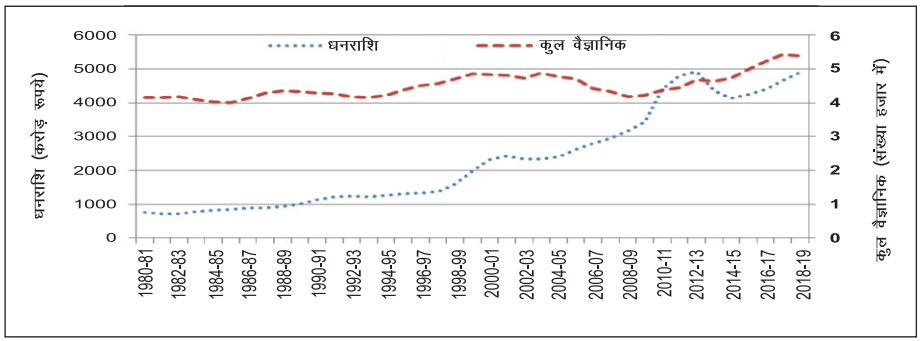

चित्र 1. भा.कृ.अनु.प. में वैज्ञानिक जनशक्ति एवं व्यय की प्रवृत्ति (2011–12 के मूल्यों के आधार पर)

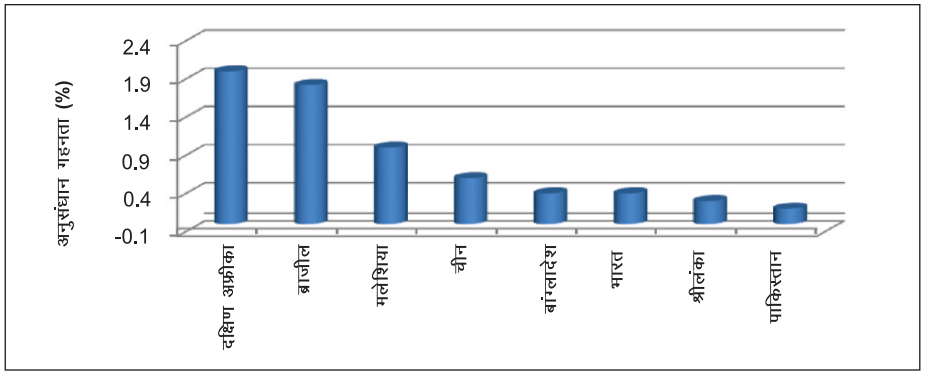

चित्र 2. भारत सहित अन्य विकासशील देशों में कृषि अनुसंधान गहनता
स्रोत : आईएफपीआरआई (2019)

अनुसंधान पर कृषि के सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) का 0.40 प्रतिशत निवेश किया जाता है, जबकि चीन में भारत की तुलना में यह 0.62 प्रतिशत, ब्राजील में 1.82 प्रतिशत और दक्षिण अफ्रीका में 2.0 प्रतिशत से अधिक है (चित्र 2)। विकसित देशों में कृषि जीडीपी का 2 प्रतिशत से अधिक कृषि अनुसंधान पर व्यय किया जाता है।

निवेश से होने वाले लाभ

अनेक अध्ययनों के द्वारा भारत में कृषि अनुसंधान में निवेश तथा इससे होने वाली लाभ की जाँच की गई है तथा लाभ की आंतरिक दर (आईआरआर) का आकलन किया गया है। इनमें से अधिकांश अध्ययनों में अनुसंधान से व्यक्तिगत फसलों द्वारा होने वाले लाभों का विश्लेषण किया गया है और कुछ का विश्लेषण सम्पूर्ण क्षेत्र की दृष्टि से किया गया है। इन अध्ययनों में आर्थिक सरप्लस मॉडल का उपयोग हुआ है और कुछ में अर्थमिती विश्लेषण का उपयोग हुआ है, ताकि कुल घटक उत्पादकता में वृद्धि का आकलन किया जा सके। विश्लेषण दर्शाता है कि आईआरआर का औसत 72 प्रतिशत था, जबकि मध्यिका मान 58 प्रतिशत था (सारणी 1)। इन तथ्यों से यह स्पष्ट संकेत मिलता है कि भारत में कृषि अनुसंधान पर और अधिक निवेश किया जाना चाहिए।

सारणी 1. कृषि अनुसंधान में निवेश से होने वाले लाभ की आंतरिक दर (प्रतिशत)

मानक	कृषि अनुसंधान		
	समुच्चय	फसल–विशिष्ट	सम्पूर्ण
माध्य	75.46	9.9	71.8
मध्यिका	58.5	53.0	57.5
न्यूनतम	46.0	6.0	6.0
अधिकतम	218.2	174.0	218.2
अध्ययनों की संख्या	10	18	28

स्रोत : पाल (2017)

कुल घटक उत्पादकता में वृद्धि

तकनीकी बदलाव के प्रभाव की जाँच का एक और तरीका कुल घटक उत्पादकता (टीएफपी) की गणना करना है जिसका उपयोग सामान्यतः अनुसंधान की भूमिका को उजागर करते हुए तकनीकी परिवर्तनों के पर्याय के रूप में किया जाता है। आकलनों से यह प्रदर्शित होता है कि वर्ष 1980–2008 की अवधि के दौरान दक्षिणी क्षेत्र में टीएफपी वृद्धि दर सर्वोच्च (0.59 प्रतिशत) थी जिसके पश्चात् क्रमशः मध्य (0.53 प्रतिशत), और उत्तरी (0.45 प्रतिशत) क्षेत्रों का स्थान था, जबकि पूर्वी क्षेत्र में यह दर सबसे कम (0.30 प्रतिशत) थी (सारणी 2)। यही प्रवृत्ति लाभ की दर तथा लाभ–लागत अनुपात में भी देखी गई।

सारणी 2. भारत में टीएफपी वृद्धि और कृषि अनुसंधान से होने वाले लाभ की दर, 1980–2008

क्षेत्र	टीएफपी वृद्धि (प्रतिशत)	लाभ की आंतरिक दर (प्रतिशत)	लाभ–लागत अनुपात
उत्तरी	0.446	80.509	16.603
पश्चिमी	0.379	61.693	10.088
मध्य	0.531	.	.
पूर्वी	0.298	34.958	3.822
दक्षिणी	0.592	64.656	10.997

स्रोत : निकोलस राडा और डेविड स्किम्पेलफेनिंग (2018) इवेल्यूएटिंग रिसर्च एंड एजुकेशन परफोरमेंस इन इंडियन एग्रीकल्चरल डेवलपमेंट. एग्रीकल्चरल इकोनोमिक्स, 49:395–406

आर्थिक प्रभाव – एक झलक

- भारतीय कृषि अनुसंधान प्रणाली विश्व की सर्वाधिक उत्पादक प्रणालियों में से एक है। पिछले निवेश पर होने वाले लाभ की मध्यिका दर 58.5 प्रतिशत थी। हाल के अध्ययन में वर्षावधि 1980–2008 के दौरान पूर्वी क्षेत्र में लाभ की दर 34.9 प्रतिशत और उत्तरी क्षेत्र में यह 80.5 प्रतिशत रही (यूएसडीए, 2018)। पिछले दो दशकों के दौरान चावल–गेहूँ फसल प्रणाली में प्रौद्योगिकीय हस्तक्षेपों के कारण होने वाले लाभ की दर 38.8 प्रतिशत थी (एनआईएपी, 2017)। एक अन्य अध्ययन में कृषि में लाभ की दर 49.14 प्रतिशत मिली है (आईएफपीआरआई, 2015)।

- वर्ष 2017–18 के दौरान भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् (भा.कृ.अनु.प.) की कुछ प्रौद्योगिकियों से 14.7 हजार करोड़ रुपये तक का वार्षिक सकल आर्थिक लाभ (सरप्लस) प्राप्त हुआ। छः प्रौद्योगिकियों से प्राप्त वार्षिक आर्थिक लाभ प्रति प्रौद्योगिकी 9.6 से 14.7 हजार करोड़ रूपये के बीच था। इसके अतिरिक्त, 11 प्रौद्योगिकियों से प्राप्त वार्षिक आर्थिक लाभ प्रति प्रौद्योगिकी 1.2 से 4.7 हजार करोड़ रूपये के बीच था। पर्यावरण एवं सामाजिक प्रभाव भी सामान रूप से प्रभावशाली थे।

- भा.कृ.अनु.प. की हाल की प्रौद्योगिकीय उपलब्धियाँ अनाज व बागवानी फसलों की उन्नत किस्मों, पशु स्वास्थ्य प्रबंधन, फलों की रोपण सामग्री के उत्पादन तथा मत्स्यपालन की विधियों से संबंधित रही हैं। इन अनुसंधानों का किसानों के प्रक्षेत्रों पर उल्लेखनीय आर्थिक प्रभाव पड़ा है तथा उपभोक्ता भी लाभान्वित हुए हैं।

- लवण प्रभावित मृदाओं, संरक्षण कृषि, फसल अपशिष्ट प्रबंधन और मृदा परीक्षण से संबंधित विकसित प्रौद्योगिकियाँ भारतीय कृषि के टिकाऊपन को बढ़ावा देने में उल्लेखनीय योगदान देने वाली सिद्ध हुई हैं। पशु स्वास्थ्य प्रबंधन, धान की बिजाई और निराई–गुड़ाई के लिए मशीन, तथा मछली महाजाल में सुधार से होने वाले लाभ का संसाधनहीन किसानों, भूमिहीन मजदूरों, तथा महिलाओं के कल्याण पर प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ा है।

नीतिगत अनुसंधान का प्रभाव

राष्ट्रीय कृषि आर्थिकी एवम् नीति अनुसंधान संस्थान (पूर्व में केन्द्र) (एनआईएपी) की स्थापना भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् द्वारा वर्ष 1991 में की गई थी। इसकी स्थापना का उद्देश्य सक्षम कृषि अनुसंधान तथा नीति को गति देना है ताकि कृषि तथा ग्रामीण अर्थव्यवस्था में कारगर, टिकाऊ व समग्र विकास और तेजी से हो सके। इस संस्थान ने गुणवत्तापूर्ण अनुसंधान उत्पाद/विषय सामाग्री विकसित करने में उल्लेखनीय योगदान दिया है जिसका उपयोग विभिन्न हितधारकों द्वारा किया गया है। संस्थान के कुछ उल्लेखनीय अनुसंधान योगदान यथा अनुसंधान एवं विकास (आर एंड डी) में निवेश तथा नीति, बौद्धिक संपदा अधिकार, खाद्य माँग और उपभोग, जिंस मूल्य–श्रृंखला, जलवायु समुत्थानशील कृषि, संस्थागत नवप्रवर्तनों, फार्म आय नीति, कृषि विविधीकरण और आगत बाजारों के क्षेत्रों में हुए हैं।

अनुसंधान अंतर्ग्रहण

एनआईएपी के अनुसंधानों की विभिन्न हितधारकों द्वारा व्यापक सराहना हुई है और उनका अत्यधिक उपयोग हुआ है। इन हितधारकों में शिक्षाविद, अनुसंधानकर्ता, अनुसंधान प्रशासक और नीति–निर्माता शामिल हैं। वर्ष 2019 तक संस्थान द्वारा 34 नीति पत्र, 45 नीति संक्षिप्तियाँ, 31 चर्चा और कार्य पत्र तथा 13 पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं जिनमें कार्यशाला के कार्यवृत्त भी शामिल हैं। ये प्रकाशन या तो इस संस्थान के संकाय सदस्यों अथवा अंतरराष्ट्रीय और राष्ट्रीय संस्थानों के सहयोग से प्रकाशित हुए हैं। इसके अलावा इसके संकाय सदस्यों द्वारा समान स्तर की राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय पत्रिकाओं में 500 से अधिक अनुसंधान लेख प्रकाशित हो चुके हैं। वर्षावधि 1996–2016 के दौरान इन प्रकाशनों के कुल 7,968 उद्धरण प्राप्त हुए हैं जिनका औसत प्रति प्रकाशन 11.5 है। सीआईआई के अध्ययनों के अनुसार इस संस्थान का, प्रति प्रकाशन उद्धरणों की संख्या, की दृष्टि से भा.कृ.अनु.प. प्रणाली में सर्वोच्च स्थान है।

अनुसंधान एवं विकास तथा कृषि तथा खाद्य नीतियों का प्रभाव

यद्यपि एनआईएपी द्वारा किए गए नीतिगत अनुसंधान के प्रभाव का मात्रात्मक आकलन करना कठिन है, तथापि अनुसंधानों के व्यावहारिक पहलुओं को एक विश्वसनीय स्रोत मानने से नीतिगत प्रक्रिया में महत्वपूर्ण अंतरालों को पाटने में सहायता मिल सकती है। संस्थान के वरिष्ठ संकाय सदस्य केन्द्र तथा राज्य सरकारों की नीति परामर्श प्रक्रियाओं से जुड़े हुए हैं और इस कार्य में संलग्न है। एनआईएपी के अनुसंधान के प्रमुख नीतिगत प्रभाव निम्नलिखित हैं :

- अनुसंधान प्राथमिकताओं तथा निवेश पर हुए अध्ययनों से परिषद् को कृषि अनुसंधान के लिए और अधिक संसाधन जुटाने में सहायता मिली है। वर्ष 1996 में यह सकल कृषि घरेलू उत्पाद का 0.3 प्रतिशत था जोकि वर्ष 2016 में बढ़कर 0.6 प्रतिशत हो गया। इससे अनुसंधान संसाधनों के आबंटन में उद्देश्यपरकता और पारदर्शिता आयी है, उभरती हुई चुनौतियों के साथ अनुसंधान कार्यक्रमों का समायोजन हुआ है, प्रतिस्पर्धात्मक अनुसंधान विधियाँ डिज़ाइन हुई हैं और अनुसंधान प्रभावों को मापना संभव हुआ है।
- विश्व बैंक द्वारा वित्तीय सहायता प्राप्त परियोजनाओं यथा एनएटीपी तथा एनएआईपी में सक्रिय भागेदारी के माध्यम से संस्थान ने बहुविषयी तथा पारिस्थितिक क्षेत्रीय मोड के अनुसंधान के बारे में राष्ट्रीय कृषि अनुसंधान प्रणाली को संवेदनशील बनाया है तथा विभिन्न क्रियाविधियों की बेहतर निगरानी के साथ–साथ उनका श्रेष्ठतर मूल्याँकन हुआ है।
- बीज उद्योग की सूचना असममितीय और संरचना पर हुए अध्ययनों का बौद्धिक संपदा अधिकार के दिशानिर्देश विकसित करने, जीएमओ के ढांचे और सामाजिक आर्थिक प्रभाव का मूल्याँकन करने तथा विविधीकृत बीज प्रणालियों को बढ़ावा देने के लिए उनमें सुधार लाने पर अनुकूल प्रभाव पड़ा है।
- यह संस्थान नीति संवाद तथा प्रक्रियाओं के विकास में सक्रिय रूप से संलग्न है। इस संस्थान का एक उल्लेखनीय योगदान 11वीं योजना के दौरान 4 प्रतिशत कृषि वृद्धि का लक्ष्य प्राप्त करने में इसके द्वारा प्रस्तावित मॉडल को अपनाया जाना रहा है। संस्थान को गर्व है कि इसके प्रयासों से कृषि में वृद्धि के निर्धारित लक्ष्य प्राप्त हुए हैं।
- एनआईएपी अनुसंधान का एक अन्य प्रमाण 12वीं योजना के दौरान बागवानी और पशुधन की दिशा में कृषि के विविधीकरण के लिए संसाधनों के आबंटन में होने वाली वृद्धि के संदर्भ में नीतिगत प्रक्रिया में देखा गया। इसमें कृषि के क्षेत्र में वृद्धि तथा देश में निर्भरता में कमी लाने की बहुत क्षमता है। इसी प्रकार, पूर्वी भारत के लिए अनुसंधान एवं विकास में होने वाले निवेश की मात्रा भी बढ़ी है।
- संस्थान द्वारा कृषि जिंसों की माँग तथा मूल्यों के पूर्वानुमान से खाद्य अर्थव्यवस्था को प्रबंधित करने में महत्वपूर्ण निवेश के रूप में लाभ प्राप्त हुआ है तथा भावी माँग को पूरा करने के लिए संदर्भात्मक अनुसंधान नियोजन करना संभव हुआ है। आहार उपयोग दरों के आकलन का इस्तेमाल केन्द्रीय सांख्यिकी संगठन द्वारा किया जाता है।
- विभिन्न विपणन प्रणालियों की दक्षता पर प्राप्त हुए प्रमाण आधारित फीडबैक का उपयोग मूल्य खोज में पारदर्शिता लाने, कारगर मूल्य–श्रृंखलाएँ विकसित करने और ठेके पर खेती को बढ़ावा देने के लिए किया गया है।
- यह संस्थान वर्ष 2022 तक किसानों की आमदनी दुगुनी करने का लक्ष्य प्राप्त करने के लिए कार्यनीतियाँ विकसित करने में सक्रिय रूप से संलग्न रहने के साथ–साथ किसानों की आमदनी के आकलन हेतु विश्लेषणात्मक ढाँचा विकसित कराने में भी सहयोग दे रहा है। ■■

[1]"ग्लिमसिस ऑफ रिसर्च प्रोडक्टिविटी ऑफ इंडियन यूनिवर्सिटीज़ एंड रिसर्च इंस्टीट्यूशंस, सीआईआईसीआई प्रतिवेदन 2017, कंफडरेशन ऑफ इंडियन इंडस्ट्री, नई दिल्ली

पूसा बासमती 1121

प्रौद्योगिकी की रूपरेखा

पूसा बासमती 1121 (पीबी 1121) भा.कृ.अनु.प.–भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान द्वारा वर्ष 2003 में विकसित एक अर्धबौनी किस्म है। इसका बासमती की अन्य परंपरागत किस्मों की तुलना में अतिरिक्त लाभ यह है कि जहाँ पूर्व की किस्में लंबी थीं, उनके पौधे खेत में बिछ/गिर जाते थे, प्रकाश अवधि के प्रति संवेदनशील थीं और कम उपज देती थीं वहीं, यह किस्म इन कमियों से मुक्त है। इस किस्म के दाने अधिक लंबे एवं पतले (पकाने पर इनकी लंबाई 22 मि.लि. तक हो जाती है), तथा मनमोहक सुगंध वाले होते हैं और इन्हें पकाने में भी कम समय लगता है। जहाँ परंपरागत बासमती किस्मों की उपज 2.5 टन/है. है, वहीं इसकी औसत उपज 4.0 टन/है. है। इसकी वृद्धि की अवधि भी बासमती की परंपरागत किस्मों की तुलना में 15–20 दिन कम है, अतः इसे अपनाने से गेहूँ की अगेती बुवाई करने में सुविधा होती है।

अपनाए जाने वाले क्षेत्र

पीबी 1121 अधिकांशतः सिंधु–गंगा के मैदानों में उगाई जाती है। इसमें पंजाब, हरियाणा, दिल्ली, हिमाचल प्रदेश, उत्तराखण्ड, जम्मू और जम्मू व कश्मीर का कठुआ जिला तथा उत्तर प्रदेश (पश्चिम) के 27 जिले शामिल हैं। इस क्षेत्र को वर्ष 2016 में बासमती चावल के लिए भौगोलिक संकेत (जीआई) का टैग प्राप्त हुआ है। भारतीय उपमहाद्वीप के बासमती चावल का मूल्य काफी अधिक है तथा भारत विश्व में बासमती चावल का सबसे बड़ा उत्पादक और निर्यातक है।

वर्तमान में, पीबी 1121 भारत में 1.10 मिलियन हैक्टर से अधिक क्षेत्रफल में उगायी जाती है। जारी होने के बाद कुछ ही वर्षों में पीबी 1121 व्यापक रूप से उगाई जाने वाली सर्वाधिक लोकप्रिय किस्म बन गई। वर्ष 2018 में इसकी खेती बासमती उगाये जाने वाले कुल क्षेत्रफल के दो–तिहाई से अधिक (70 प्रतिशत) भाग में की गई। वर्ष 2014 में यह

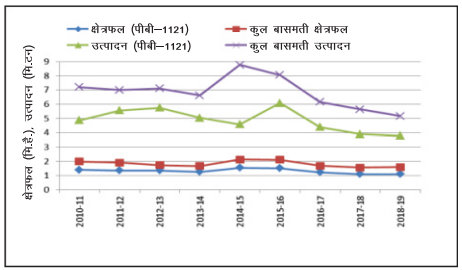

भारत में बासमती और पीबी 1121 की खेती का क्षेत्र और उत्पादन

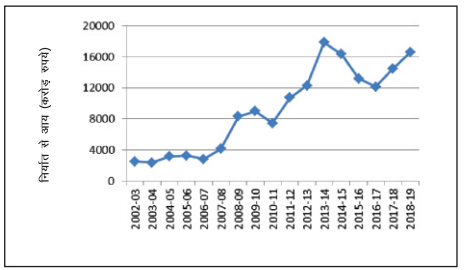

पीबी 1121 से होने वाली आकलित निर्यात आय, एपीडा

तीन–चौथाई (74 प्रतिशत) क्षेत्रफल में बोयी गयी थी। इसके तहत सबसे अधिक क्षेत्रफल (पीबी 1121 के अंतर्गत 1.54 मिलियन हैक्टर) 2014–15 में प्राप्त किया गया, परन्तु बासमती की अन्य किस्म पी बी 1509 के विकास से पी बी 1121 के क्षेत्रफल में कमी आई, साथ ही में इसके मूल्य में भी गिरावट आई। पीबी 1121 को अपनाए जाने की संभावना अपने सर्वोच्च स्तर (70 प्रतिशत) तक पहुँच गई है और 2025 तक इसके इसी स्तर पर बने रहने तथा 2030 तक इसके 50 प्रतिशत तक रहने की संभावना है।

लक्षित लाभार्थी और मुख्य लाभ

पीबी 1121 की खेती उन लाखों किसानों द्वारा की जा रही है जिनके पास सिंचाई की सुविधा है, भले ही उनके प्रक्षेत्र का आकार कुछ भी हो। इससे उत्पादकों में समृद्धि आई और अब यह भारत से निर्यात होने वाली अग्रणी कृषि जिंसों में है। इस किस्म से बासमती चावल की परंपरागत किस्मों की तुलना में दो गुना अधिक रोजगार सृजित हुआ है। इसकी उपज अधिक है, जबकि इसकी खेती की लागत अन्य बासमती किस्मों की खेती की लागत के लगभग बराबर है। इस प्रकार इससे उत्पादकों को अधिक लाभ प्राप्त होता है। इस किस्म की मध्य पूर्व, ईरान, आस्ट्रेलिया, अफ्रीका, कनाडा, संयुक्त राज्य अमेरिका, आदि जैसे देशों में बहुत माँग है तथा इसका अधिक मूल्य प्राप्त होता है। इसे इसकी अनूठी सुगंध और स्वाद के लिए पहचाना गया है।

आर्थिक लाभ

बासमती चावल को इसके पकाने तथा खाने संबंधी गुणों की दृष्टि से अंतरराष्ट्रीय बाजार में अधिक मूल्य वाली कृषि जिंस माना गया है। बासमती चावल का लगभग 90 प्रतिशत व्यापार भारत द्वारा समुद्र पार के बाजारों में किया जाता है। पीबी 1121 किस्म के विकास से बासमती चावल के निर्यात से होने वाली आय लगभग छह गुना बढ़ गई है। यह वर्ष 2006–07 में 5,573 करोड़ रुपये थी जोकि वर्ष 2018–19 में बढ़कर 32,806 करोड़ रुपये (2018 के मूल्यों पर) हो गई। पीबी 1121 से होने वाली वार्षिक निर्यात आय त्रैवार्षिकी 2018–19 की समाप्ति पर अनुमानतः 19,939 करोड़ रुपये (अर्थात् 2926.7 मिलियन अमेरिकी डॉलर) है। त्रैवार्षिकी 2018–19 के दौरान पीबी 1121 से प्राप्त वार्षिक आर्थिक सरप्लस के 14,707 करोड़ रुपये होने का अनुमान है जोकि भा.कृ.अनु.प. के त्रैवार्षिकी 2018–19 के दौरान कुल बजट (6,440 करोड़ रुपये) से दो गुना से अधिक है। पीबी 1121 से होने वाली आय त्रैवार्षिकी 2018–19 के दौरान भारत की राष्ट्रीय कृषि अनुसंधान प्रणाली (एनएआरएस) पर होने वाले कुल व्यय (15,379 करोड़ रुपये) का लगभग 96 प्रतिशत है। भा.कृ.अनु.प. चावल अनुसंधान पर लगभग 7 प्रतिशत वैज्ञानिक जनशक्ति आबंटित करती है जबकि पीबी 1121 से त्रैवार्षिकी 2018–19 के दौरान होने वाला वार्षिक लाभ इसके कुल व्यय की तुलना में दुगुना है।

सीएसआर 30 : लवण सहिष्णु बासमती

प्रौद्योगिकी की रूपरेखा

भा.कृ.अनु.प.–केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान, करनाल में पहली बार लवण सहिष्णु बासमती चावल की किस्म सीएसआर 30 विकसित की गई है। बासमती चावल की यह किस्म हरियाणा के किसानों के बीच अत्यधिक लोकप्रिय है। इसे केन्द्रीय किस्म विमोचन समिति (सीवीआरसी) द्वारा हरियाणा, उत्तर प्रदेश और पंजाब के लवण प्रभावित क्षेत्रों में उगाने के लिए 2001 में पहचान और अधिसूचित किया गया तथा वर्ष 2012 के दौरान सीवीआरसी द्वारा बासमती सीएसआर 30 के रूप में पुनः अधिसूचित किया गया। यह किस्म pH~9.5 तक की सोडामयता और ईसी~ 7.0 dSm-1 की लवणता सह सकती है। बासमती सीएसआर 30 से लवण प्रभावित मृदाओं में 28 क्विंटल/है. तक उपज प्राप्त होती है। इस किस्म के दाने लंबे एवं पतले और अत्यधिक सुगंधित होते हैं। धान से चावल भी अधिक मात्रा में प्राप्त होता है और पके हुए चावल का लंबायमान अनुपात भी बहुत अच्छा है।

अपनाए जाने वाले क्षेत्र

भारत में बासमती चावल की खेती का क्षेत्रफल वर्ष 2000–01 में 6.86 लाख हैक्टर था जोकि वर्ष 2018–19 में बढ़कर 15.15 लाख हैक्टर हो गया। वर्ष 2018–19 के दौरान बासमती चावल के कुल क्षेत्रफल में से बासमती सीएसआर 30 की खेती लगभग 6 प्रतिशत (87,300 हैक्टर) में की गई। नवीनतम आकलनों के अनुसार हरियाणा में बासमती चावल की खेती वाले क्षेत्रफल के लगभग 60 प्रतिशत भाग में सीएसआर 30 की खेती की जाती है। खरीफ 2018–19 के दौरान भारत में बासमती चावल का कुल उत्पादन 50.27 लाख टन

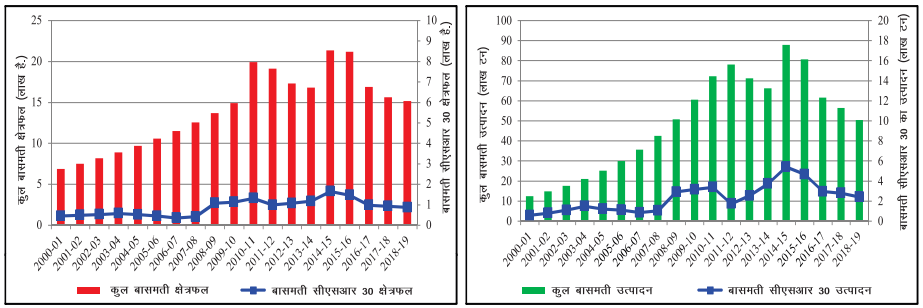

भारत में कुल बासमती की तुलना में सीएसआर 30 की खेती के लिए अपनाया गया क्षेत्रफल तथा उत्पादन का हिस्सा

था, और इसमें सीएसआर 30 का योगदान 2.42 लाख टन (5 प्रतिशत) था। वर्षावधि 2000–01 से 2018–19 के दौरान सीएसआर 30 की खेती लगभग 16.45 लाख हैक्टर लवण प्रभावित क्षेत्रफल में की गई और इसका उत्पादन 43.80 लाख टन हुआ। वर्ष 2008–09 के दौरान बासमती सीएसआर 30 की खेती सर्वाधिक क्षेत्रफल (8%) में की गयी।

लक्षित लाभार्थी और मुख्य लाभ

इस किस्म को लवण प्रभावित क्षेत्रों में बासमती की खेती करने वाले किसानों द्वारा प्राथमिकता दी जाती है। सीएसआर 30 बासमती लवण प्रभावित मृदाओं में तरावड़ी बासमती (एचबीसी 19) की तुलना में 5 क्विंटल प्रति हैक्टर (20 प्रतिशत) और पूसा बासमती 1121 की तुलना में 1.5 क्विंटल प्रति हैक्टर (6 प्रतिशत) अधिक उपज देती है। इस किस्म के चावल का अन्य किस्मों की तुलना में (3,500–3,600 रुपये/क्विंटल) अधिक बाजार मूल्य (3,800–4,000 रुपये/क्विंटल) प्राप्त होता है। बासमती चावल की अन्य किस्मों की तुलना में इसकी सुगंध और अन्य गुणवत्ता बेहतर हैं।

आर्थिक लाभ

वर्ष 2000–01 से 2018–19 की अवधि के दौरान सीएसआर 30 से सृजित होने वाला कुल आर्थिक सरप्लस अनुमानतः 26,217.59 करोड़ रुपये (2016–17 से 2018–19 के औसत निर्यात मूल्य पर) था। उत्पादक और उपभोक्ता सरप्लस का हिस्सा क्रमशः 51 प्रतिशत और 49 प्रतिशत रहा। निर्यात मूल्य के आधार पर किए गए आकलन से यह स्पष्ट हुआ कि उपरोक्त अवधि के दौरान बासमती सीएसआर 30 से 1,379.87 करोड़ रुपये वार्षिक आर्थिक सरप्लस सृजित हुआ।

सीएसआर 36 : लवण सहिष्णु चावल

प्रौद्योगिकी की रुपरेखा

चावल की लवण सहिष्णु किस्म सीएसआर 36 भा.कृ.अनु.प.–केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान, करनाल द्वारा विकसित की गई तथा इसे वर्ष 2005 में हरियाणा, उत्तर प्रदेश और पुदुचेरी के सोडामयता से प्रभावित क्षेत्रों में खेती के लिए जारी किया गया। यह pH~9.9 तक सोडयमयता और ईसी 10dSm-1 तक की लवणता को सह सकती है। यह किस्म लवण प्रभावित मृदाओं में 40 क्विंटल/हैक्टर तथा सामान्य मृदाओं में 60–65 क्विंटल/हैक्टर उपज देती है। सीएसआर 36 के दाने लंबे एवं पतले (6.76 मि.मी.) होते हैं जिनकी पकाने की गुणवत्ता श्रेष्ठ है। इसमें अन्य श्रेष्ठ गुण जैसे धान से चावल की वसूली (67.5 प्रतिशत) तथा मध्यवर्ती एमाइलोज़ अंश (25.0 प्रतिशत) भी मौजूद हैं जो इसके चिपचिपेपन को कम करने में सहायक हैं।

अपनाए जाने वाले क्षेत्र

सीएसआर 36 किस्म हरियाणा, उत्तर प्रदेश, पश्चिम बंगाल और बिहार के लवण प्रभावित क्षेत्रों में उगाई जाती है। जारी किए जाने से लेकर अब तक इस किस्म की खेती औसतन 2.52 लाख हैक्टर क्षेत्रफल में की गई है। यह इन राज्यों में लवण प्रभावित मृदाओं में चावल की खेती के कुल क्षेत्रफल का 11.45 प्रतिशत है। वर्ष 2018–19 के दौरान सीएसआर 36 किस्म की खेती 1.75 लाख हैक्टर क्षेत्रफल में की गई और वर्ष 2010–11 के दौरान इसकी सर्वाधिक खेती हुई और इसे कुल बासमती वाले क्षेत्रफल के 25 प्रतिशत भाग में उगाया गया।

लक्षित लाभार्थी और मुख्य लाभ

यह किस्म विशेष रूप में देश के लवण प्रभावित राज्यों के अधिकांश किसानों द्वारा उगाई जाती है। यह किस्म लवण प्रभावित मृदाओं में चावल की पूसा 44 किस्म की तुलना में 8 क्विंटल/हैक्टर (25 प्रतिशत) अधिक उपज देती है। इसमें जैविक प्रतिकूल स्थितियों जैसे प्रध्वंस रोग, चावल के टुंगरो रोग और हरे पत्ती फुदके के विरुद्ध अंतःनिर्मित हल्का प्रतिरोध मौजूद है।

आर्थिक लाभ

सीएसआर 36 के कारण उत्पादन का प्रति टन आनुपातिक निवेश लागत परिवर्तन लगभग

चावल की लवण सहिष्णु किस्म सीएसआर 36

2.4 प्रतिशत है। वर्षावधि 2006–07 से 2018–19 के दौरान सीएसआर 36 से सृजित होने वाला कुल आर्थिक सरप्लस 8,374 करोड़ रुपये है (2018 के मूल्यों पर)। उत्पादक तथा उपभोक्ता सरप्लस का अनुपात क्रमशः 51 प्रतिशत और 49 प्रतिशत है। सीएसआर 36 का वार्षिक आर्थिक सरप्लस अनुमानतः 644 करोड़ रुपये है।

एचडी 2967 (पूसा सिंधु गंगा) गेहूँ

प्रौद्योगिकी की रुपरेखा

एचडी 2967 भा.कृ.अनु.प.– भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली, द्वारा विकसित गेहूँ की दोहरी बौनी किस्म है। इसे सबसे पहले वर्ष 2011 में उत्तर पश्चिमी मैदानी क्षेत्रों (एनडब्ल्यूपीजेड) के लिए जारी किया गया और बाद में वर्ष 2014–15 में उत्तर पूर्वी मैदानी क्षेत्रों (एनईपीजेड) में खेती के लिए आगे बढ़ाया गया। इसकी दाना उपज क्षमता एनडब्ल्यूपीजेड में 7.0 टन/है. और एनईपीजेड में 6.52 टन/है. है। यह किस्म एनडब्ल्यूपीजेड में 5.04 टन/है. तथा एनईपीजेड में 4.54 टन/है. की औसत दाना उपज देती है। इसकी फसल में दोजियां भारी मात्रा में लगती हैं। इसकी बाली मध्यम, घनी, ऊपर से पतले आकार की तथा सफेद तुष वाली होती है। इसका दाना कहरुवा रंग का, मध्यम भारी और चमकदार, अंडाकार व 40 ग्राम परीक्षण भार का होता है जिसमें 12.7% प्रोटीन अंश पाया जाता है। एनडब्ल्यूपीजेड और एनईपीजेड में इस किस्म को पकने में क्रमशः औसतन 143 दिन और 129 दिन लगते हैं तथा इसमें पीले रतुए की 78एस84 और 46एस119 जातियों के साथ–साथ पत्ती रतुआ के प्रति उच्च स्तर की प्रतिरोध क्षमता है। इस किस्म में अन्य तुलनीय किस्मों की अपेक्षा पत्ती झुलसा, करनाल बंट तथा पताका कंडुआ का कम प्रकोप देखा गया है। इस किस्म में जस्ते, तांबे तथा मैंग्नीज का अधिक अंश होता है और इसका अवसादन मान भी उच्च है तथा यह ब्रेड और चपाती बनाने के लिए उपयुक्त है।

अपनाए जाने वाले क्षेत्र

एचडी 2967 किस्म को एनडब्ल्यूपीजेड जिसमें पंजाब, हरियाणा, दिल्ली, राजस्थान (कोटा और उदयपुर मंडलों को छोड़कर), पश्चिमी उत्तर प्रदेश (झांसी मंडल को छोड़कर), जम्मू तथा जम्मू व कश्मीर के कठुआ जिले, हिमाचल प्रदेश के उना जिले की पोंटा घाटी, उत्तराखण्ड के तराई क्षेत्र और एनईपीजेड जिसमें पूर्वी उत्तर प्रदेश, बिहार, झारखण्ड, ओडिशा, पश्चिम बंगाल, असम तथा उत्तर पूर्वी राज्यों के मैदानी क्षेत्र शामिल हैं, में भली प्रकार अपनाया गया है।

जारी होने के बाद इस किस्म का प्रचार–प्रसार बड़ी तेजी से हुआ तथा वर्ष 2016–17 के दौरान एनडब्ल्यूपीजेड तथा एनईपीजेड में इसकी खेती गेहूँ के कुल क्षेत्रफल के लगभग 40 प्रतिशत भाग में की गई और यह वर्ष 2020–21 तक इन क्षेत्रों में एक प्रमुख किस्म होगी। इसने पीबीडब्ल्यू 343 का स्थान लिया है जोकि धारी (पीले) तथा पत्ती (भूरे) रतुए के प्रति संवेदनशील थी और जिसके कारण उसकी उपज प्रभावित हुई थी। इसके अलावा गेहूँ की कुछ नई किस्में भी जारी हुई हैं। उदाहरण के लिए एचडी 3226 किस्म में प्रोटीन की मात्रा अधिक है (औसतन 12.6 प्रतिशत) और इसकी दाना उपज क्षमता 7.96 टन/है. है। इसी प्रकार, करन वंदना (डीबीडब्ल्यू 187 किस्म) उत्तर पूर्वी मैदानी क्षेत्रों की सिंचित व समय पर बुवाई वाली दशाओं के लिए जारी की गई है। इसमें पत्ती रतुआ और पत्ती झुलसा के विरुद्ध प्रतिरोधक क्षमता है तथा इसकी उपज क्षमता 6.47 टन/है. है। इस किस्म की नई जारी की गयी गेहूँ की किस्मों से कठिन प्रतिस्पर्धा है और धीरे–धीरे वर्ष 2030 तक एनडब्ल्यूपीजेड तथा एनईपीजेड में गेहूँ के कुल क्षेत्रफल के 20 प्रतिशत भाग में ही एचडी 2967 की खेती होते रहने की संभावना है।

लक्षित लाभार्थी और मुख्य लाभ

फसल में फूल आने के दौरान तापमान में उतार–चढ़ाव होना अब नियमित हो गया है तथा एचडी 2967 किस्म तापमान में होने वाले इस प्रकार के उतार–चढ़ावों को सह सकती है। बेहतर दाना उपज, अच्छा भूसा तथा कुछ रोगों (पीले और भूरे रतुओं) के विरुद्ध प्रतिरोधक क्षमता की दृष्टि से यह किस्म गंगा–यमुना के मैदानी भागों के सभी किसानों के द्वारा उगाई जा रही है। एनईपीजेड में छोटे किसानों की संख्या अधिक है तथा यह किस्म उनके लिए बहुत ही अनुकूल है।

आर्थिक लाभ

पिछले 8 वर्षों (2011–18) की अवधि के दौरान एचडी 2967 का कुल आर्थिक सरप्लस अनुमानतः 62,405 करोड़ रुपये (2018 के मूल्यों पर) था तथा यह 61:39 के अनुपात में क्रमशः उत्पादकों और उपभोक्ताओं के बीच वितरित था। त्रैवार्षिकी 2018–19 के लिए इस किस्म के द्वारा सृजित कुल आर्थिक सरप्लस अनुमानतः 12,889 करोड़ रुपये (2018 के मूल्यों पर) था। ■■

केआरएल 210 : लवण सहिष्णु गेहूँ

प्रौद्योगिकी की रुपरेखा

लवण सहिष्णु किस्मों का विकास देश के लवणता ग्रस्त क्षेत्रों में फसलोत्पादन को सीमित करने की समस्या से निटपने का एक प्रभावकारी उपाय है। गेहूँ जैसी फसलों में दाना उपज, दोजियों की प्रभावी संख्या और पादप ऊँचाई किस्मों के विकास का मुख्य आधार माना जाता है। गेहूँ की किस्म केआरएल 210 एक लवण सहिष्णु मझोले दानों वाली किस्म है जिसका विकास भा.कृ.अनु.प.–केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान, करनाल, द्वारा किया गया है। इसे हरियाणा, पंजाब, उत्तर प्रदेश, गुजरात व राजस्थान के लवण प्रभावित क्षेत्रों के लिए वर्ष 2010 में जारी किया गया था। यह किस्म pH-9.3 तक की सोडामेयता तथा 7.3 dSm-1 तक की लवणता की स्थिति को सह सकती है। इस किस्म से लवण प्रभावित मृदाओं में 34 क्विंटल/हैक्टर और सामान्य मृदाओं में 55 क्विंटल/हैक्टर उपज प्राप्त होती है। यद्यपि लवण प्रभावित मृदाओं में दाना उपज लवण की गहनता पर निर्भर करती है।

अपनाए जाने वाले क्षेत्र

यह किस्म हरियाणा, पंजाब और उत्तर प्रदेश के लवण प्रभावित क्षेत्रों में बहुत लोकप्रिय है। इस लवण सहिष्णु किस्म केआरएल 2010 की खेती प्रति वर्ष लगभग 22,279 हैक्टर क्षेत्रफल में की जाती है। उपरोक्त राज्यों में वर्ष 2010–11 से 2018–19 की अवधि के दौरान इस किस्म के अंतर्गत आने वाले क्षेत्रफल में लवण प्रभावी क्षेत्रफल का हिस्सा अनुमानतः 1.27 प्रतिशत था।

लक्षित लाभार्थी और मुख्य लाभ

गेहूँ की किस्म केआरएल 210 को लवण प्रभावी क्षेत्रों के किसानों द्वारा वर्तमान में अन्य किस्मों की तुलना में अधिक प्राथमिकता दी जाती है। कृषक भागीदारी दृष्टिकोण के अंतर्गत यह देखा गया है कि केआरएल 210 से लवण प्रभावित मृदाओं (>pH 9.3 और RSC >5.0) में एचडी 2967 की तुलना में 5 क्विंटल/हैक्टर (14 प्रतिशत) अधिक उपज प्राप्त होती है। इस किस्म में लगभग 11 प्रतिशत प्रोटीन होता है तथा यह बेहतर गुणवत्ता वाली ब्रेड बनाने के लिए उपयुक्त मानी जाती है। इसके परिणामस्वरूप यह किसानों के बीच सर्वाधिक लोकप्रिय है।

गेहूँ की लवण सहिष्णु किस्म केआरएल 210

आर्थिक लाभ

वर्ष 2010–11 से 2018–19 की अवधि के दौरान गेहूँ की केआरएल 210 किस्म से अनुमानतः 404 करोड़ रुपये का आर्थिक सरप्लस प्राप्त हुआ। यह राशि उत्पादकों और उपभोक्ताओं में क्रमशः 61:39 के अनुपात में बांटी गई। इस प्रकार, लवण सहिष्णु गेहूँ किस्म केआरएल 210 से 45 करोड़ रुपये वार्षिक आर्थिक सरप्लस मिला।

पूसा मस्टर्ड 25 (एनपीजे–112)

प्रौद्योगिकी की रुपरेखा

भा.कृ.अनु.प.– भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली द्वारा विकसित पूसा मस्टर्ड 25 किस्म वर्ष 2010 में किसानों द्वारा उगाए जाने के लिए जारी की गई थी। यह किस्म सेज 8 × पूसा जगरंथ के संकरण के पश्चात् चयन की वंशावली विधि को अपनाकर विकसित की गई थी। यह सितम्बर (खरीफ फसलों की कटाई के पश्चात्) से मध्य दिसम्बर (विशेष रूप से गेहूँ और सब्जियों की रबी वाली फसलों की बुवाई के समय तक) बहुफसली प्रणाली के लिए अगेती बुवाई वाली किस्म के रूप में बहुत उपयुक्त है जिससे पूरे फसल क्रम में एक अतिरिक्त फसल ली जा सकती है। यह किस्म 107 दिनों में पक जाती है और इस प्रकार यह पूसा महक की तुलना में 7–10 दिन अगेती है। अपनी अगेती परिपक्वता के कारण यह विभिन्न फसल प्रणालियों में बहुत उपयुक्त सिद्ध होती है। इसकी पत्तियाँ साधारण, छोटी तथा हरे रंग की और कोमल होती हैं। पूसा मस्टर्ड 25 की औसत उपज 14.7 क्विंटल/हैक्टर है। इसके बीजों का आकार छोटा (4.5 ग्रा./1000) होता है तथा इसमें औसतन 39.60 प्रतिशत तेल अंश होता है। इसका पौधा झाड़ी के आकार का होता है जिसकी आधारीय शाखाएं मध्यम ऊँचाई वाली होती हैं। पौधा 165 सें.मी. तक लंबा होता है तथा प्रति पौधा प्राथमिक शाखाओं की संख्या 4–7 होती है। इस प्रकार, इसका मुख्य प्ररोह लंबा होता है तथा पौधों में लगने वाली फलियों का घनत्व भी अधिक होता है।

अपनाए जाने वाले क्षेत्र

पूसा मस्टर्ड 25 किस्म को दिल्ली, हरियाणा, पंजाब, जम्मू व कश्मीर, राजस्थान और उत्तर प्रदेश (पश्चिम) में उगाए जाने की सिफारिश की गई है। अल्पावधि वाली यह किस्म सितम्बर में बोई जाती है तथा मध्य दिसम्बर तक पक जाती है। इस समय तक बचाव की प्रक्रिया के कारण इस फसल को हानि पहुँचाने वाले रोग या कीट का कोई प्रकोप नहीं होता है। यह बी. रापा सीवी तोरिया का एक श्रेष्ठ विकल्प है (तोरिया की खेती वाले परंपरागत क्षेत्र में)।

लक्षित लाभार्थी और मुख्य लाभ

यह किस्म अगेती बुवाई वाली सिंचित दशा के लिए उपयुक्त है तथा उच्च तापमान को सह सकती है। यह किस्म वर्ष 2010 में छोटे स्तर पर उगाई जानी शुरू की गई थी और बाद में यह सरसों की खेती वाले कुछ क्षेत्रों में लोकप्रिय हुई तथा इसको 20 प्रतिशत क्षेत्रफल में

उगाया जाने लगा। ऐसा अनुमान है कि इसकी खेती के तहत वर्ष 2027–28 तक क्षेत्रफल में औसतन 10 प्रतिशत की गिरावट आएगी। इससे प्राप्त उपज, सरसों की किसी अन्य तुलनीय किस्मों की उपज (8 क्विंटल/हेक्टर) की अपेक्षा लगभग 100 प्रतिशत अधिक है। यह तोरिया का एक अच्छा विकल्प मानी गई है। इसकी उपज क्षमता 1,324 से 1,654 कि.ग्रा./है. है तथा इसमें 36 से 41 प्रतिशत तेल अंश होता है।

आर्थिक लाभ

पिछले 9 वर्षों की अवधि (2010–18) के दौरान पूसा मस्टर्ड 25 से अनुमानतः 14,323 करोड़ रुपये का कुल आर्थिक सरप्लस सृजित हुआ (2018 के मूल्यों पर)। इसे उत्पादकों और उपभोक्तों के बीच क्रमशः 51:49 के अनुपात में बांटा गया। त्रैवार्षिकी 2018–19 के लिए औसत सरप्लस अनुमानतः 2,919 करोड़ रुपये था तथा इसमें से उत्पादकों को 1,499 करोड़ रुपये व उपभोक्ताओं को 1,420 करोड़ रुपये का सरप्लस आबंटित हुआ।

सीओ–0238 (करण) : गन्ना की किस्म

प्रौद्योगिकी की रुपरेखा

गन्ना देश की एक महत्वपूर्ण नकदी फसल है तथा इसकी खेती उष्ण कटिबंधी व उपोष्ण, दोनों क्षेत्रों में 5 मिलियन हैक्टर से अधिक क्षेत्रफल में की जाती है। सीओ–0238 (करण 4) भा.कृ. अनु.प.–गन्ना प्रजनन संस्थान, कोयम्बतूर द्वारा विकसित गन्ना की एक अद्भुत किस्म है जिसे वर्ष 2009 में किसानों के खेतों में उगाए जाने के लिए अधिसूचित किया गया था। यह एक उच्च उपजशील किस्म है तथा इसमें चीनी की अधिक मात्रा होती है। इस प्रकार यह गन्ने की अन्य किस्मों से श्रेष्ठ है क्योंकि वे कम उपज देने के साथ–साथ कम चीनी देने वाली थी। इसके साथ ही यह किस्म जैविक व अजैविक दोनों प्रतिकूल स्थितियों को सहने में अधिक समर्थ है। इस किस्म की औसत उपज (>81 टन/है.) है तथा अन्य किस्मों की तुलना में अधिक चीनी की वसूली होती (12 प्रतिशत) है। यह किस्म सभी मौसमों में सूखा, जल भराव और लवणता के प्रति सहिष्णु है। इस प्रकार यह सभी मौसमों में बिजाई के लिए उपयुक्त है। इससे अच्छी पेड़ी प्राप्त होती है तथा यह कम तापमान को भी सह सकती है। यह किस्म चौड़ी कतार वाली रोपाई के लिए भी उपयुक्त है। इस प्रकार, यह यांत्रिक कटाई की दृष्टि से भी बहुत अनुकूल है।

अपनाए जाने वाले क्षेत्र

सीओ–0238 किस्म की खेती के क्षेत्रफल में निरापद रूप से उत्तर प्रदेश, पंजाब, हरियाणा, बिहार, उत्तराखण्ड, मध्य प्रदेश के कुछ भागों, ओडिशा और गुजरात में तीव्र गति से विस्तार हुआ है। वर्ष 2014–15 में इसकी खेती उपोष्ण क्षेत्र में 2.70 लाख हैक्टर क्षेत्रफल में की जाती थी जोकि वर्ष 2018–19 में बढ़कर 23.04 लाख हैक्टर क्षेत्रफल में की जाने लगी। इस प्रकार, इतने कम समय में केवल एक किस्म की खेती सबसे अधिक क्षेत्रफल में (44.9 प्रतिशत) करना संभव हुआ है। वर्ष 2012–13 में सीओ–0238 के जारी होने से पहले उपोष्ण क्षेत्र का गन्ने की खेती के सम्पूर्ण क्षेत्रफल तथा उत्पादन में हिस्सा क्रमशः 55.8 प्रतिशत तथा 49.4 प्रतिशत था जोकि वर्ष 2017–18 में बढ़कर 59.6 प्रतिशत और 57.9 प्रतिशत हो गया।

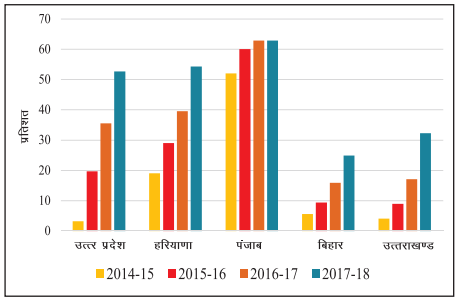

उपोष्ण क्षेत्र के राज्यों में सीओ–0238 की खेती वाला क्षेत्र और इसकी खेती को अपनाया जाना

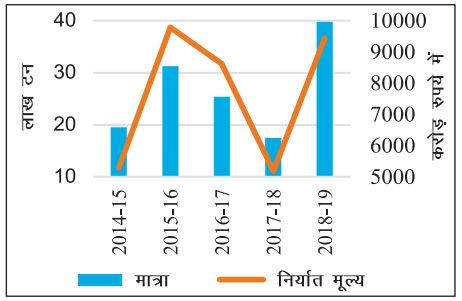

सीओ–0238 से चीनी के निर्यात के माध्यम से होने वाली अनुमानित आय

लक्षित लाभार्थी और मुख्य लाभ

यह किस्म सिंचाई की सुविधा वाले लाखों किसानों द्वारा उगाई जाती है यद्यपि कि प्रक्षेत्र का आकार चाहे कितना भी है। और इससे किसानों तथा गन्ना उद्योग में समृद्धि आई है। वर्ष 2014–15 से 2018–19 की अवधि के दौरान सीओ–0238 के उगाने से किसानों को 14,381 करोड़ रुपये की अतिरिक्त आय हुई (गन्ना और चारा से)। इसके परिणामस्वरूप किसानों को लगभग 45,405 रुपये/है. का अतिरिक्त लाभ हुआ। इसी प्रकार, अधिक मात्रा में चीनी प्राप्त होने के कारण 67.4 लाख टन अतिरिक्त चीनी का उत्पादन हुआ और गन्ना मिलों को बिना किसी अतिरिक्त लागत के 25,007 करोड़ रुपये मूल्य की अतिरिक्त चीनी प्राप्त हुई।

आर्थिक लाभ

सीओ 0238 किस्म के उगाये जाने से देश को पिछले चार वर्षों (2014–15 से 2017–18) में चीनी और उपोत्पाद के रूप में 28,795 करोड़ रुपये का अतिरिक्त लाभ हुआ (58.5 लाख टन चारा जिसकी कीमत 305 करोड़ रुपये थी, 135.0 लाख टन गन्ना की खोई जिसकी कीमत 2,643 करोड़ रुपये थी, 20.3 लाख टन शीरा जिसकी कीमत 837 करोड़ रुपये थी और 1.35 लाख टन प्रेस मड जिसकी कीमत 2.7 करोड़ रुपये थी)। इस प्रकार, चीनी और उपोत्पादों से होने वाला कुल अतिरिक्त लाभ 7,199 करोड़ रुपये प्रति वर्ष था। सीओ–0238 से वर्ष 2014–18 की अवधि के दौरान कुल 10,064.3 करोड़ रुपये का वार्षिक आर्थिक सरप्लस अर्जित हुआ जिसे उत्पादकों और उपभोक्ताओं के बीच 60:40 के अनुपात में बांटा गया। इस अतिरिक्त उत्पादन से वर्ष 2018–19 के दौरान कुल 6,400 करोड़ रुपये मूल्य की चीनी के निर्यात का मार्ग भी प्रशस्त हुआ।

नीति कार्यान्वयन का प्रभाव

भारत सरकार वर्ष 2003 से गैसोलीन में इथेनॉल मिलाने (5 प्रतिशत) का कार्यक्रम कार्यान्वित कर रही है। तथापि, यह गन्ना तथा चीनी उत्पादन के दुष्चक्र के कारण व्यावहारिक रूप से कार्यान्वित नहीं हो पाया था। सीओ–0238 के विकास से उपज तथा चीनी प्राप्ति का यह विलोम संबंध समाप्त हुआ तथा देश में गन्ना उत्पादन में क्रांति आई। अतः सरकार ने भारी शीरे और गन्ने के रस से इथेनॉल उत्पादन करने के कार्यक्रम को अनुमति दी जिसके अंतर्गत ईंधन के रूप में प्रयोग के लिए इथेनॉल का वांछित मात्रा में उत्पादन करना संभव हुआ। अब वर्ष 2018–19 में देश में 5 प्रतिशत इथेनॉल मिलाने का लक्ष्य प्राप्त कर लिया गया है और शीघ्र ही यह 10 प्रतिशत के स्तर पर पहुँच जाएगा। ऐसा गन्ना की सीओ–0238 किस्म के विकास के कारण संभव हुआ है।

सीओ–86032 (नैना) : गन्ना की किस्म

प्रौद्योगिकी की रुपरेखा

गन्ना की अधिक उपज और अधिक चीनी वसूली वाली किस्म सीओ–86032 (नैना) भा.कृ.अनु.प.–गन्ना प्रजनन संस्थान, कोयम्बतूर द्वारा विकसित की गई थी। इसे वर्ष 2000 में किसानों के खेतों में उगाए जाने के लिए अधिसूचित व जारी किया गया। यह नई शताब्दी की एक अद्भुत किस्म है। सीओ 86032 अक्तूबर और जनवरी/फरवरी की रोपाई, दोनों के लिए उपयुक्त है। यह 120–150 सें.मी. के चौड़े कतार अंतराल के लिए भी उपयुक्त है और इस विधि से गन्ना उगाने पर इसकी उपज में कोई कमी नहीं आती है। यांत्रिक कटाई के लिए उपयुक्त होने के कारण यह गन्ने की खेती के यांत्रिकीकरण की दृष्टि से भी बहुत अनुकूल है। इस किस्म के गन्ने में 12 महीनों के बाद तक उच्च गुणवत्ता वाला रस बना रहता है। अखिल भारतीय समन्वित अनुसंधान परियोजना परीक्षणों के अंतर्गत यह किस्म अपने सापेक्ष किस्मों की अपेक्षा 23 टन/है. अतिरिक्त उपज देती है। भारत के उष्णकटिबंधी राज्यों में किसानों के खेतों में इसकी अतिरिक्त औसत उपज अनुमानतः 10–12 टन/है. और चीनी वसूली दर में 0.24 से 1.2 प्रतिशत का सुधार हुआ है। पेड़ी फसल में भी तीन साल (पेड़ियों) तक श्रेष्ठ उपज प्राप्त होती है। यह किस्म भारत में गुड़ और खांडसारी उत्पादन के लिए भी बहुत उपयुक्त है।

अपनाए जाने वाले क्षेत्र

सीओ–86032 किस्म ने भारत के तटवर्ती अंचल जिसमें तमिल नाडु, कर्नाटक, महाराष्ट्र, गुजरात, आंध्र प्रदेश और केरल राज्य शामिल हैं, में लगभग सभी पूर्ववर्ती किस्मों का स्थान बहुत जल्दी ले लिया है। पिछले दस वर्षों से अधिक की अवधि के दौरान तमिल नाडु को इस किस्म से सबसे अधिक लाभ हुआ है। यहाँ गन्ना की खेती वाले क्षेत्रफल के लगभग 80 प्रतिशत से अधिक हिस्से में सीओ–86032 की खेती की जाती है। अब कर्नाटक, महाराष्ट्र, गुजरात और केरल में भी उगाई जाने वाली यह गन्ना की प्रमुख किस्म है (इन राज्यों में कम से कम 50 प्रतिशत क्षेत्रफल में यह किस्म उगाई जाती है)। इसी प्रकार आंध्र प्रदेश और ओडिशा में भी यह काफी बड़े क्षेत्रफल में उगाई जाती है। देश के उष्णकटिबंधी भागों में भी यह सर्वाधिक लोकप्रिय किस्म है तथा वर्ष 2011–12 के दौरान इसकी खेती 1.2 मिलियन हैक्टर से अधिक क्षेत्रफल में की गयी। गन्ना की खेती वाले कुल क्षेत्रफल के लगभग 24.9 प्रतिशत भाग में यह किस्म उगाई गई तथा वर्ष 2011–12 के दौरान कुल गन्ना उत्पादन (105 मिलियन टन) में इसका योगदान 30.7 प्रतिशत रहा। उष्णकटिबंधी राज्यों में इस किस्म को अपनाए जाने का स्तर अपनी उच्च सीमा तक पहुँच गया है तथा वर्ष 2020 तक इसमें 40 प्रतिशत की गिरावट आएगी। इसके बावजूद भी यह किस्म भारत के उष्णकटिबंधी क्षेत्रों में लगभग 8 लाख हैक्टर क्षेत्रफल में उगाई जा रही है।

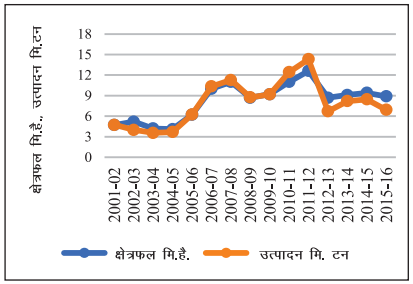

उष्णकटिबंधी राज्यों में सीओ 86032 की खेती वाला क्षेत्र और वृद्धिशील उत्पादन

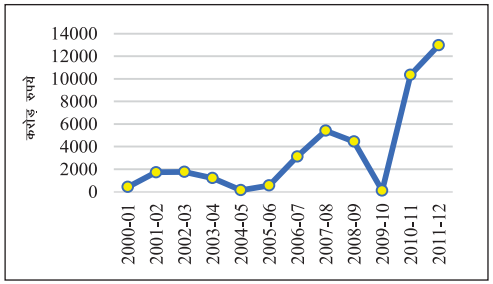

सफेद चीनी के निर्यात के माध्यम से अर्जित अनुमानित विदेशी आय

लक्षित लाभार्थी और मुख्य लाभ

यह किस्म सुनिश्चित सिंचाई की सुविधा वाले लाखों किसानों द्वारा उगाई जा रही है, भले ही उनके प्रक्षेत्र का आकार कुछ भी हो। इससे किसानों तथा गन्ना उद्योग में समृद्धि आई है। इसकी खेती में अन्य किस्मों के समान लागत लगाकर अधिक उपज ली जा सकती है तथा गन्ने की अन्य किस्मों की तुलना में इससे अधिक लाभ प्राप्त होता है। इसके परिणामस्वरूप किसानों को होने वाला लाभ 33,000 रुपये/है. बढा है (2018 के मूल्यों पर)। इसके कारण गन्ना कारखाने अपनी पूरी क्षमता के साथ चीनी का उत्पादन करने में सफल रहे हैं तथा गन्ने के उत्पादन व प्रसंस्करण में लगे लोगों को नियमित रूप से रोजगार उपलब्ध हुआ है।

आर्थिक लाभ

सीओ–86032 किस्म से गन्ने के उत्पादन तथा चीनी उद्योग को पिछले 15 वर्षों (वर्ष 2002–16) के दौरान गन्ने की अभूतपूर्व आपूर्ति सुनिश्चित हुई है। वर्ष 2015–16 तक निवल अतिरिक्त मूल्य के संदर्भ में इस किस्म का आर्थिक प्रभाव 20,354.6 करोड़ रुपये रहा। ऐसा उष्णकटिबंधी भारत में इस किस्म के बड़े पैमाने पर अपनाए जाने के कारण संभव हुआ। इसी प्रकार, सीओ–86032 किस्म से अधिक मात्रा में चीनी वसूली के कारण 4.12 लाख टन अतिरिक्त चीनी का उत्पादन हुआ और गन्ना कारखानों को 694.4 करोड़ रुपये का राजस्व प्राप्त हुआ। इस किस्म के कारण 53.4 लाख टन शीरा प्राप्त हुआ जिसका मूल्य 2,137.9 करोड़ रुपये था और 336 लाख टन गन्ने की खोई प्राप्त हुई जिसका मूल्य 4,453 करोड़ रुपये था। इस प्रकार, सीओ–86032 किस्म से कुल 27,639.9 करोड़ रुपये का आर्थिक लाभ हुआ। सीओ–86032 से वर्ष 2001–2016 की अवधि के दौरान 13,098 करोड़ रुपये का वार्षिक आर्थिक सरप्लस सृजित हुआ जो उत्पादकों और उपभोक्ताओं के बीच 67:33 के अनुपात में बांटा गया। वर्ष 2000–01 से 2011–12 अवधि के दौरान सफेद चीनी के निर्यात में 1,147 करोड़ रुपये से शुरू होकर 12,973.7 करोड़ रुपये (2012 के मूल्यों पर) वृद्धि हुई।

कुफरी पुखराज : आलू की किस्म

प्रौद्योगिकी की रुपरेखा

देश में आलू के प्रमुख उत्पादक क्षेत्रों में ऐसी किस्मों की आवश्यकता है जो अगेती या मध्यम अवधि में पकने वाली हों, जिनके कन्द तेजी से बढ़ते हों, जो प्रकाशावधि के प्रति असंवेदनशील हों, और जिनके जीर्णित होने की दर धीमी हो, उत्पादकता अधिक हो, जिनके कन्दों को लंबे समय तक भंडारित किया जा सके और जो पछेती झुलसा रोग के विरुद्ध प्रतिरोधी हों। भा.कृ.अनु.प.–केन्द्रीय आलू अनुसंधान संस्थान, शिमला में वर्ष 1998 में कुफरी पुखराज नामक आलू की किस्म विकसित की गयी जोकि अगेती से मध्यम परिपक्वता वाली थी और जिसकी उपज क्षमता 35–40 टन/है. है। इस किस्म को मध्यम अवधि तक भंडारित किया जा सकता है तथा यह अगेती झुलसा की प्रतिरोधी होने के साथ–साथ पछेती झुलसा की भी मध्यम प्रतिरोधी है। जहाँ तक उपभोक्ताओं की पसंद तथा प्रसंस्करण गुणवत्ता का संबंध है, इस किस्म की बनावट मोमिया, तथा गंध हल्की होती है और पकाने पर यह रंगहीन भी नहीं होती है। इसके साथ ही प्रकाश के सम्पर्क में आने से भी इस किस्म के आलुओं में कोई परिवर्तन नहीं होता है।

अपनाए जाने वाले क्षेत्र

कुफरी पुखराज को उत्तर भारत के मैदानी तथा पठारी क्षेत्रों के लिए विकसित किया गया था। जैसाकि विदित है कि आलू उत्पादन के कुल क्षेत्रफल का लगभग 80 प्रतिशत से अधिक भाग (21.42 लाख हैक्टर) उत्तर प्रदेश, पश्चिम बंगाल, बिहार, पंजाब, हरियाणा, झारखण्ड, छत्तीसगढ़, असम और ओडिशा राज्यों में स्थित है। इन लक्षित राज्यों में पुखराज किस्म को अपनाए जाने की दर उत्तर प्रदेश में 27.54 प्रतिशत (1.67 लाख हैक्टर), बिहार में 41.25 प्रतिशत (1.30 लाख हैक्टर), पश्चिम बंगाल में 18.93 प्रतिशत (77,836 हैक्टर) और गुजरात में 85 प्रतिशत (95,585 हैक्टर) रही है। वर्तमान में कुफरी पुखराज की खेती देश के सम्पर्ण आलू क्षेत्रफल के लगभग 33 प्रतिशत हिस्से में की जाती है। उत्तर प्रदेश, पश्चिम बंगाल, बिहार और असम राज्यों में भारत के कुल उत्पादन तथा क्षेत्रफल के लगभग 70 प्रतिशत भाग में (प्रत्येक राज्य में) आलू की खेती होती है। अब कुफरी चिपसोना, कुफरी ख्याति और कुफरी सदाबहार जैसी उन्नत किस्में जारी होने के कारण इस किस्म को अपनाए जाने की दर चरम सीमा तक पहुँच गई है।

लक्षित लाभार्थी

उत्तरी मैदानों तथा पठारी क्षेत्रों के बारानी और सिंचित दशाओं वाले सभी श्रेणियों के किसान इस किस्म को अपने खेतों पर उगा रहे हैं।

मुख्य लाभ

आलू की कुफरी ज्योति किस्म की तुलना में कुफरी पुखराज 15 प्रतिशत अधिक उपज देती है और इसकी खेती की लागत भी 15 प्रतिशत कम है। इसका कारण रोग प्रबंधन में होने वाली बचत है। कुफरी पुखराज का मुख्य गुण इसके कन्दों का आकार जल्दी बड़ा होना तथा कम निवेश वाली पारिस्थितिक प्रणाली के लिए उपयुक्त होना है। वर्तमान में भी उत्तर प्रदेश और बिहार राज्यों में अगेती से मध्यम परिपक्वता वाली यह सबसे लोकप्रिय किस्म है। यद्यपि बेहतर भंडारणशीलता वाली कुछ अन्य किस्में भी जारी हो चुकी हैं लेकिन किसानों के बीच इसकी लोकप्रियता अभी भी बनी हुई है।

आर्थिक लाभ

कुफरी पुखराज आज भी उत्तर भारत के मैदानी क्षेत्रों की अल्पावधि किस्मों में से एक सर्वाधिक लोकप्रिय किस्म है। वर्ष 1998–99 से 2017–18 की अवधि के दौरान कुफरी पुखराज से सृजित होने वाला कुल आर्थिक सरप्लस/लाभ अनुमानतः 92,650 करोड़ रुपये रहा (2018 के मूल्यों पर)। वर्ष 2017–18 के दौरान वार्षिक आर्थिक सरप्लस अनुमानतः 4,729.0 करोड़ रुपये था (2018 के मूल्यों पर) और उत्तर भारत के मैदानी तथा पठारी क्षेत्रों में इस किस्म की खेती के अन्तर्गत लगभग 7.1 लाख हैक्टर क्षेत्रफल रहा।

अनार : फूले भगवा

प्रौद्योगिकी की रुपरेखा

शुष्क क्षेत्र के फलों पर अखिल भारतीय समन्वित अनुसंधान परियोजना के अंतर्गत किए गए सघन अनुसंधान प्रयासों के परिणामस्वरूप महात्मा फुले कृषि विद्यापीठ, राहुड़ी द्वारा वर्ष 2003–04 में अनार की फुले भगवा (जिसे लोकप्रिय रूप से भगवा कहा जाता है) नामक किस्म जारी की गई। इस किस्म के बीज कोमल होते हैं तथा इसका छिलका चमकीले लाल रंग का और आकर्षक होता है। यह किस्म परंपरागत किस्म गणेश की तुलना में अधिक लोकप्रिय हो गई है। उल्लेखनीय है कि गणेश किस्म के अनार का बीजचोल गुलाबी रंग का होता है। भगवा किस्म अधिक उपज देने वाली है जिसके फल का आकार बड़ा, स्वाद मीठा, बड़ा और आकर्षक बीजचोल है। भगवा का रंग चमकदार तथा अति आकर्षक है। इसका छिलका मोटा होता है और यह सुदूर बाजारों के लिए उपयुक्त है। इस किस्म में फल धब्बा तथा थ्रिप्स के प्रति कम संवेदनशीलता जैसे वांछित गुण विद्यमान हैं।

अपनाए जाने वाले क्षेत्र

यह किस्म देश के उष्णकटिबंधी तथा उपोष्ण, दोनों क्षेत्रों के लिए उपयुक्त है। इन क्षेत्रों में महाराष्ट्र, कर्नाटक, गुजरात, आंध्र प्रदेश और मध्य प्रदेश राज्य आते हैं। भारत के महाराष्ट्र राज्य में वर्ष 2017–18 के दौरान अनार की खेती के कुल क्षेत्रफल का लगभग 63.2 प्रतिशत (2.34 लाख हैक्टर) हिस्सा है इसके बाद कर्नाटक (11.1 प्रतिशत), गुजरात (13.04 प्रतिशत), आंध्र प्रदेश (4.0 प्रतिशत) और मध्य प्रदेश (4.1 प्रतिशत), आदि राज्य अनार की खेती के क्षेत्रफल की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। वर्ष 2015–16 के दौरान अनार की खेती वाले कुल क्षेत्रफल के लगभग 86.10 प्रतिशत (अर्थात् 1.69 लाख हैक्टर क्षेत्रफल में) हिस्से में भगवा को अपनाया गया। महाराष्ट्र में इस किस्म की खेती को अपनाने की दर 90 प्रतिशत है जबकि अन्य राज्यों में भी यह 75 प्रतिशत से अधिक है। देश स्तर पर वर्ष 2025–26 तक इसे अपनाए जाने की दर के सर्वोच्च होने की संभावना है जो 90 प्रतिशत तक हो सकती है। महाराष्ट्र राज्य में अनार सहकारी समिति और कृषि निर्यात क्षेत्र (पोमग्रेनेट कोऑपरेटिव सोसायटी एंड एग्री–एक्सपोर्ट ज़ोन) की स्थापना से किसानों को निर्यात संबंधी गतिविधियों में सहायता प्राप्त हुई है।

लक्षित लाभार्थी

सिंचित उत्पादन प्रणाली के अंतर्गत आने वाले सभी श्रेणी के किसान अर्थात् छोटे, मझोले और बड़े किसान इस किस्म के लक्षित लाभार्थी हैं। उद्यमी, उद्योग और निर्यातक भी इस किस्म से लाभ प्राप्त कर रहे हैं क्योंकि विश्व में भारत अनार का सबसे बड़ा निर्यातक है।

मुख्य लाभ

अनार की भगवा किस्म इसके सापेक्ष तुलनीय किस्म गणेश की अपेक्षा 100 प्रतिशत अधिक उपज देती है। इस किस्म के फलों के टिके रहने की क्षमता 15–25 दिन है तथा आदर्श तापमान पर इनकी गुणवत्ता में कोई कमी नहीं आती है। भगवा किस्म के फलों को अन्य किस्मों की तुलना में 200 प्रतिशत से अधिक मूल्य प्राप्त होता है क्योंकि बीजचोल, रंग तथा आकार की दृष्टि से यह किस्म श्रेष्ठ है। इस किस्म की लोकप्रियता का अनुमान, वर्षावधि 2007–08 से लेकर 2016–17 तक इसकी खेती के तहत क्षेत्रफल वृद्धि (123 प्रतिशत), उत्पादन वृद्धि (280 प्रतिशत), उत्पादकता वृद्धि (70 प्रतिशत) और निर्यात में हुई वृद्धि (380 प्रतिशत), से लगाया जा सकता है। भगवा किस्म को यूरोपीय तथा अन्य अंतरराष्ट्रीय बाजारों में काफी स्वीकारा तथा सराहा गया है।

आर्थिक लाभ

विश्व में भारत अनार का सबसे बड़ा उत्पादक है और यहाँ वर्तमान में अनार की खेती के कुल क्षेत्रफल के लगभग 86 प्रतिशत भाग में भगवा किस्म उगाई जाती है (2.05 लाख हैक्टर क्षेत्रफल)। अनुमानतः 100 प्रतिशत उपज वृद्धि के साथ–साथ इसके जारी होने के वर्ष अर्थात् 2003–04 से लेकर 15 वर्ष की अवधि के दौरान कुल आर्थिक सरप्लस 46,100 करोड़ रुपये रहा है (2018 के मूल्यों पर)। उपभोक्ताओं तथा उत्पादकताओं के बीच लाभ का वितरण 73:27 के अनुपात में हुआ है। वर्ष 2017–18 के लिए वार्षिक आर्थिक लाभ 9,617 करोड़ रुपये रहा (वर्ष 2018 के मूल्यों पर)। निर्यात की दृष्टि से कहा जा सकता है कि वर्ष 2003–04 में 10,315 मीट्रिक टन से 21 करोड़ रुपये की निर्यात आय से आरंभ होकर अब यह 688.47 करोड़ रुपये (98.98 मिलियन अमरीकी डॉलर) हो गई है। ऐसा वर्तमान में 6.78 लाख मीट्रिक टन अनार के निर्यात के कारण संभव हुआ है। भारत से अनार के निर्यात में भगवा किस्म का हिस्सा प्रमुख है।

अंगूर : डॉगरिज मूलवृंत

प्रौद्योगिकी की रुपरेखा

वर्ष 1990 के दशक के दौरान महाराष्ट्र और कर्नाटक राज्यों में मृदा की लवणीय तथा क्षारीय दशाओं के कारण अनुसंधानकर्मियों को ऐसे मूलवृंत पर अनुसंधान करने की आवश्यकता हुई जिससे अंगूर की खेती को लाभप्रद बनाया जा सके। भा.कृ.अनु.प.–भारतीय बागवानी अनुसंधान संस्थान में 1990 के दशक के आरंभ में अनेक मूलवृंत–श्रंखलाओं का मूल्याँकन किया गया तथा वर्ष 1993–1994 के दौरान डॉगरिज मूलवृंत पर अंगूर की खेती की विधि मानकीकृत की गई। 'डॉगरिज मूलवृंत' पर अंगूर उगाने के परिणामस्वरूप गुणवत्ता में सुधार हुआ, इसके उत्पादन लागत में कमी आई तथा उत्पादकता बढ़ी और इन सबके परिणामस्वरूप अंगूर की खेती करने वाले किसानों को अधिक लाभ हुआ।

अपनाए जाने वाले क्षेत्र

डॉगरिज़ मूलवृंत प्रौद्योगिकी को प्रक्षेत्र स्तर पर अपनाए जाने की शुरूआत 1996–97 और उसके बाद से हुई और तब से लेकर अब तक इसकी खेती वाले कुल क्षेत्रफल के लगभग 90 प्रतिशत भाग में व्यापक रूप से प्रसार हो गया है। महाराष्ट्र में इस प्रौद्योगिकी को तेजी से और व्यापक रूप से अपनाया गया है। अंगूर की खेती करने वाले अन्य क्षेत्रों कर्नाटक, आंध्र प्रदेश और तमिल नाडु को मिलाकर इस तकनीक के तहत लगभग 70 प्रतिशत हिस्सा है। इसको अपनाए जाने की गति में 2002 के बाद अधिक तेजी आई। केवल महाराष्ट्र और कर्नाटक राज्य में अंगूर की खेती वाले कुल क्षेत्रफल का लगभग 95.11 प्रतिशत हिस्से (वर्तमान में 1.25 लाख हैक्टर क्षेत्रफल) में अंगूर की खेती डॉगरिज़ मूलवृंत पर उगाकर की जाती है। ऐसा अनुमान है कि 2025 तक इसकी खेती के तहत आने वाला कुल क्षेत्रफल बढ़कर 95 प्रतिशत हो जाएगा क्योंकि टीएसपी कार्यक्रम के अंतर्गत मिजोरम और नागालैंड जैसे उत्तर–पूर्वी क्षेत्रों में अंगूर की खेती के क्षेत्रफल में विस्तार हो रहा है।

लक्षित लाभार्थी

डॉगरिज़ मूलवृंत पर अंगूर की खेती को मैदानी क्षेत्रों में सिंचित उत्पादन प्रणालियों के अंतर्गत आने वाले सभी श्रेणी के किसान अपनाये, यह लक्ष्य निर्धारित किया गया है। अब टीएसपी कार्यक्रम के अंतर्गत इसकी उपयुक्तता की दृष्टि से इसे उत्तर–पूर्वी क्षेत्र के पर्वतीय भागों में इसकी खेती का विस्तार करने के प्रयास किए जा रहे हैं।

मुख्य लाभ

डॉगरिज़ मूलवृंत के उपयोग के कारण महाराष्ट्र और कर्नाटक के सभी क्षेत्रों में अंगूर की खेती की उपज में 5 से 10 प्रतिशत की वृद्धि हुई है, जबकि खेती की लागत में 10 से 15 प्रतिशत की कमी देखी गई है। इसके अतिरिक्त कुछ अन्य लाभ हैं जैसे कि अंगूरों की उन्नत गुणवत्ता तथा फसल के लिए जल संबंधी कुल आवश्यकता में कमी, आदि। इस प्रौद्योगिकी से किसानों द्वारा मदिरा उत्पादन के लिए अंगूर की नई किस्मों के अंगीकरण की संभावना भी उत्पन्न हुई है क्योंकि इस पद्धति में अंगूर की कलम को डॉगरिज़ मूलवृंत पर भली प्रकार स्थापित किया जा सकता है।

आर्थिक लाभ

निर्यात की दृष्टि से अंगूर भारत के महत्वपूर्ण फलों में से एक है। डॉगरिज़ मूलवृंत पर अंगूर की फसलें उगाने की विधि को अपनाकर वर्ष 1996–97 से 2017–18 की अवधि के दौरान कुल 15,212 करोड़ रुपये का प्रत्यक्ष आर्थिक लाभ प्राप्त हुआ है (2018 के मूल्यों पर)। वर्ष 2017–18 के दौरान आर्थिक सरप्लस 1,721.6 करोड़ रुपये था।

ताजे अंगूर के निर्यात से वर्ष 2018 के दौरान 334.91 मिलियन अमेरिकी डॉलर (2,335 करोड़ रुपये) की विदेशी मुद्रा प्राप्त हुई। इसमें से लगभग 90 प्रतिशत निर्यात डॉगरिज़ मूलवृंत पर उगाई गई फसल से प्राप्त अंगूरो का हुआ है।

काजू : सॉफ्टवुड कलम लगाना

प्रौद्योगिकी की रुपरेखा

काजू की फसल की परपरागित प्रकृति होने के कारण पौध संततियाँ/किस्मों की पहचान उनके उगने के बाद की जाती है जो अत्यधिक विषमजनित होने के साथ–साथ निष्पादन (उत्पादन) की दृष्टि से भी बहुत अलग–अलग होती हैं। काजू में विश्वसनीय तथा वाणिज्यिक रूप से व्यावहारिक वानस्पतिक प्रवर्धन की तकनीक विकसित करने पर जोर देते हुए भा.कृ.अनु.प.–काजू अनुसंधान निदेशालय द्वारा पहले बीजपत्रोपरिक (इपिकोटाइल) कलम लगाने की विधि विकसित की गई और बाद में वर्ष 1990–91 में प्रवर्धन के लिए इसे सुधार कर एक उन्नत सॉफ्टवुड कलम लगाने की, तकनीक जारी की गई।

अपनाए जाने वले क्षेत्र

सॉफ्टवुड कलम तकनीक को देश के विभिन्न कृषि जलवायु क्षेत्रों में काजू की पौध उगाने वाली सभी पौधशालाओं/प्रगतिशील किसानों को लक्ष्य में रखते हुए विकसित किया गया है ताकि श्रेष्ठ वानस्पतिक प्रवर्धित सॉफ्टवुड कलम लगाने की यह तकनीक इन क्षेत्रों में व्यापक रूप से अपनाई जा सके। काजू तथा कोको विकास निदेशालय (कृषि तथा किसान कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार), कोच्चि द्वारा सहायता प्राप्त 100 से अधिक क्षेत्रीय पौधशालाओं में काजू की श्रेष्ठ पौध उत्पादन के लिए इस प्रौद्योगिकी को अपनाया जा रहा है। वर्तमान में काजू की खेती के तहत 10.62 लाख हैक्टर क्षेत्रफल में से 6.72 लाख हैक्टर में काजू की रोपाई सॉफ्टवुड कलम तकनीक अपनाकर की जा रही है। प्रतिवर्ष इन पौधशालाओं/काजू उगाने वाले किसानों द्वारा केवल सॉफ्टवुड कलम की तकनीक को अपनाकर काजू की लगभग 70 लाख पौध विकसित की जा रही हैं। इसके साथ ही नए उद्यानों में भी केवल इन्हीं पौध की रोपाई करके इस तकनीक का विस्तार किया जा रहा है।

लक्षित लाभार्थी

भारत के काजू उगाने वाले सभी प्रमुख राज्यों नामतः केरल, कर्नाटक, गोवा और महाराष्ट्र में संसाधन की कमी व संसाधन की समृद्धता वाली, दोनों दशाओं के अंतर्गत सभी श्रेणी के किसानों के लिए इसे लक्षित किया गया है। उपरोक्त के अलावा तमिल नाडु, आंध्र प्रदेश, ओडिशा और पश्चिम बंगाल के साथ–साथ पूर्वी तट के काजू की खेती करने वाले किसान भी इसमें शामिल हैं।

मुख्य लाभ

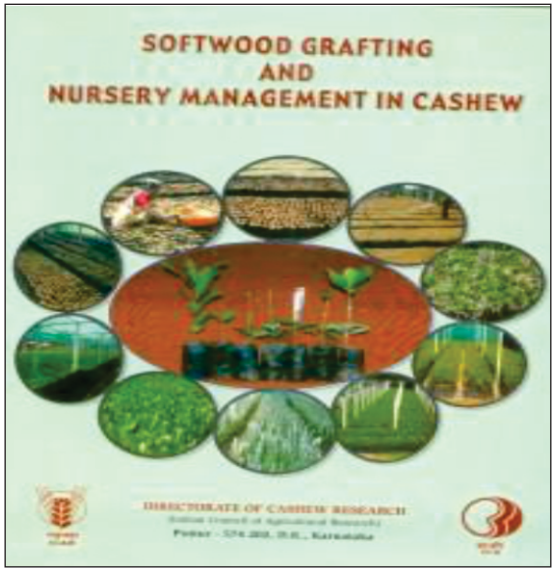

रोपण सामग्री में समरूपता तथा फसल पैदावार की अवधि में कमी (पूर्व प्रजनन आयु 5–6 वर्ष से घटकर तीन वर्ष रह जाना), इस प्रवर्धन तकनीक द्वारा उगाई गई पौध रोपण से होने वाले प्रमुख लाभ हैं। परंपरागत ढंग से बीज द्वारा रोपाई की तकनीक की तुलना में सॉफ़्टवुड कलम विधि से तैयार किए गए पौधों से लगभग 15 प्रतिशत अधिक उपज मिलती हैं। साथ ही, खेती की लागत में भी दोनों विधियों में कोई अंतर नहीं आता है। इस विधि को अपनाकर प्रक्षेत्र स्तर पर उद्यमशीलता का विकास हुआ है क्योंकि काजू की खेती करने वाले किसान इस तकनीक से विकसित पौध के प्रमुख आपूर्तिकर्ता थे तथा इस प्रकार प्रतिवर्ष लगभग 80 लाख पौध तैयार की गई और प्रत्येक पौधे से कम से कम 10 रुपये का लाभ हुआ।

आर्थिक लाभ

इस प्रौद्योगिकी के अपनाए जाने की शुरूआत से वर्ष 2017–18 तक 9,965.69 करोड़ रुपये औसत लाभ (आर्थिक सरप्लस) हुआ तथा वार्षिक आर्थिक सरप्लस 937.14 करोड़ रुपये रहा। उपभोक्ताओं तथा उत्पादकों के बीच लाभ का वितरण 74:26 के अनुपात में हुआ।

सिट्रस : प्ररोह–शीर्ष कलम लगाना

प्रौद्योगिकी की रुपरेखा

पौधशाला की परंपरागत विधियों के अंतर्गत सिट्रस हरीतिमा और विषाणुओं जैसे रोगजनकों के संक्रमण के कारण आशाजनक गुणों से युक्त मातृ पौधों का बड़े पैमाने पर प्रगुणन किया जाना संभव नहीं है। विषाणु संक्रमित मातृ वृक्षों से विषाणुमुक्त पौधे प्राप्त करने की एकमात्र संभावना प्ररोह शीर्ष कलम लगाना है। भा.कृ.अनु.प.–केन्द्रीय नींबूवर्गीय फल अनुसंधान संस्थान (सीसीआरआई) वर्ष 2003–04 में विषाणुओं तथा विषाणु जैसे रोगों के उन्मूलन के लिए प्ररोह शीर्ष कलम लगाने (एसटीजी) की विधि का विकास किया। इस विकसित प्रौद्योगिकी से स्थानीय कलम को स्वच्छ करने तथा संक्रमित स्रोतों से भी सच्चे प्रकार के स्वस्थ मातृ वृक्ष उत्पन्न करने में सहायता मिली।

अपनाए जाने वाले क्षेत्र

नींबू वर्गीय फलों या सिट्रस की खेती वाले सभी क्षेत्रों, विशेषकर संतरा और मौसम्बी की खेती करने वाले क्षेत्रों, यथा महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश, गुजरात, राजस्थान, पंजाब, हरियाणा तथा सभी दक्षिणी राज्यों में एसटीजी तकनीक अपनाने का लक्ष्य निर्धारित किया गया है। केन्द्रीय नींबूवर्गीय फल अनुसंधान संस्थान ने अभी तक नींबूवर्गीय फलों की खेती करने वाले किसानों/पौधशाला कर्मियों के लिए 15 लाख प्रमाणित स्वस्थ रोपण सामग्री जारी की है जिसे देश में लगभग 5,500 हैक्टर क्षेत्रफल में उगाया गया है। पूरे भारत में लगभग एक करोड़ रोपण स्टॉक की वार्षिक माँग है जबकि केन्द्रीय नींबूवर्गीय फल अनुसंधान संस्थान से रोपण सामग्री की केवल एक प्रतिशत मात्रा की ही आपूर्ति हो पाती है जिसका कारण सीमित जनशक्ति तथा अपर्याप्त बुनियादी ढाँचा है। इस क्षेत्र में निजी पौधशालाओं की भागेदारी से ऐसा अनुमान है कि प्रतिवर्ष लगभग 1805 हैक्टर क्षेत्रफल (5,00,000 कलमों) की आवश्यकता की पूर्ति हो सकेगी।

लक्षित लाभार्थी

महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश, गुजरात, राजस्थान, पंजाब, हरियाणा तथा दक्षिणी राज्यों के प्रगतिशील किसान, पौधशालाओं के स्वामी, विश्वविद्यालय, ऊतक संवर्धन कंपनियाँ, फार्म उत्पादक संगठन जोकि रोगमुक्त रोपण सामग्री की संख्या कई गुनी बढ़ाने में रूचि रखते हैं, इन सभी को लाभ पहुँचाने का लक्ष्य निर्धारित किया गया है।

मुख्य लाभ

समरूप, सच्चे प्रकार की तथा रोगमुक्त रोपण सामग्री का मुख्य लाभ यह है कि इससे

स्थानांतरण के लिए तैयार कलम

सफल दोहरी कलम

अधिक उपज प्राप्त होती है। इन कलमों को उगाकर विकसित पौधों पर समय पर पुष्पन होता है जिसके परिणामस्वरूप गुणवत्ता तथा उपज में सुधार होता है। परंपरागत विधियों की तुलना में कलम लगाए गए पौधों से अनुमानतः 10 टन/है. से 20 टन/है. तक की औसत उपज वृद्धि प्राप्त हुई है। इसके अलावा कलम लगाए गए फलों का आकार भी अपेक्षाकृत बड़ा होता है (150 ग्रा.), उनमें कुल घुलनशील ठोस या टीएसएस उच्चतर (110 ब्रिक्स) रहता है और रस प्राप्ति भी अधिक (48 प्रतिशत) होती है।

आर्थिक लाभ

पिछले 15 वर्षों की अवधि के दौरान 2018 के मूल्यों पर एसटीजी तकनीक से प्राप्त किए गए पौधों पर संतरा और मौसम्बी उगाने से होने वाला कुल आर्थिक सरप्लस/लाभ अनुमानतः 2,491.2 करोड़ रुपये रहा है। वर्ष 2017–18 के लिए आर्थिक लाभ 515 करोड़ रुपये (वर्ष 2018 के मूल्यों पर) था। इस प्रौद्योगिकी को अधिकांशतः संतरा और मौसम्बी के मामले में 17,900 हैक्टर क्षेत्रफल में अपनाया गया है। वर्ष 2029–30 तक प्रत्येक वर्ष 2000 हैक्टर का लक्ष्य रखते हुए इस प्रौद्योगिकी से कुल 41,900 हैक्टर क्षेत्रफल से 12,799.68 करोड़ रुपये का लाभ प्राप्त होने की संभावना है। अभी तक केन्द्रीय नींबूवर्गीय फल अनुसंधान संस्थान, नागपुर ने इस श्रेष्ठ रोपण सामग्री की बिक्री से 1.19 करोड़ रुपये का राजस्व अर्जित किया है।

अर्का रक्षक और अर्का सम्राट : टमाटर के संकर

प्रौद्योगिकी की रुपरेखा

टमाटर का पत्ती मोड़क विषाणु (टीओएलसीवी), जीवाण्विक झुलसा (बीडब्ल्यू) और अगेती झुलसा (ईबी) टमाटर के कुछ ऐसे सर्वाधिक कठिन रोगों में से हैं जिनका प्रबंधन करना बहुत मुश्किल है क्योंकि फसल की उपज को अत्यधिक हानि पहुँचाने वाले इन रोगों के प्रसार को रोकने के लिए रासायनिक उपचार की कोई भी कारगर विधि उपलब्ध नहीं है। भा.कृ.अनु.प.– भारतीय बागवानी अनुसंधान संस्थान (आईआईएचआर) ने तिहरे प्रतिरोध वाली अर्का रक्षक (2010) और अर्का सम्राट (2016) टमाटर की संकर किस्में विकसित की हैं जो टीओएलसीवी, बीडब्ल्यू और ईबी के विरुद्ध प्रतिरोधी पाई गई हैं और इनसे 140 दिनों में 80 टन/है. तक की उपज प्राप्त होती है। अर्का रक्षक किस्म के टमाटर वर्गाकार गोल होते हैं तथा ये बाजार में ताजा बिक्री के साथ–साथ प्रसंस्करण के लिए भी उपयुक्त पाए गए हैं जबकि अर्का सम्राट के फल प्रतिअंडाकार से लेकर अत्यधिक गोल आकृति के होते हैं और ये केवल बाजार में ताजे बेचे जाने के लिए ही उपयुक्त हैं।

अपनाए जाने वाले क्षेत्र

तिहरे प्रतिरोध वाले टमाटर के संकर/किस्मों को अधिकांशतः जीवाण्विक झुलसा (बीडब्ल्यू) से ग्रस्त मृदाओं में संक्रमण वाले क्षेत्रों के लिए लक्षित करते हुए विकसित किया गया था और टीओएलसीवी के प्रकोप के कारण इन्हें केवल ग्रीष्मकालीन खेती के लिए ही सीमित रखा गया। तथापि, ये संकर अन्य मौसमों में भी उगाए जा सकते हैं इन उच्च उपजशील संकरों को खरीफ और ग्रीष्म ऋतु में भी उगाया जा सकता है। अर्का सम्राट की सिफारिश मई 2015 में राष्ट्रीय स्तर पर अंचल VIII (कर्नाटक, तमिल नाडु, आंध्र प्रदेश और केरल) के लिए की गई तथा सितम्बर 2016 में इसे राष्ट्रीय स्तर पर जारी किए जाने के लिए अधिसूचित किया गया। वर्ष 2018–19 में इन संकरों की लगभग 4,900 हैक्टर क्षेत्रफल में खेती की गई। इनके तेजी से प्रसार के लिए इन संकरों के बीज, बीज एजेंसियों द्वारा बड़े पैमाने पर उत्पन्न करने की आवश्यकता है। भा.कृ.अनु.प.– भारतीय बागवानी अनुसंधान संस्थान, निजी बीज कंपनियों को इन संकरों के लाइसेंस प्रदान करने का प्रयास कर रहा है (अब तक 12 कंपनियों को लाइसेंस दिया जा चुका है)।

लक्षित लाभार्थी

भारत के मैदानों में सिंचित उत्पादन प्रणालियों को अपनाने वाले सभी श्रेणी के किसान इन किस्मों की खेती कर सकते हैं। टीएसपी कार्यक्रम के अंतर्गत इन संकरों का देश के उत्तर–पूर्वी क्षेत्र में प्रचार–प्रसार करने के प्रयास भी किए जा रहे हैं।

मुख्य लाभ

प्रक्षेत्र अध्ययनों से यह संकेत मिला है कि इन संकरों की खेती से 35.32 प्रतिशत अधिक उपज मिलती है तथा प्रति इकाई उत्पादन लागत में भी कमी आती है। तथापि देखा गया है कि किसानों को इसकी खेती के लिए 23 प्रतिशत अधिक लागत लगानी पड़ती है। इनसे होने वाले निवल लाभ 58.8 प्रतिशत अधिक थे। इन संकरों का एक मुख्य लाभ यह भी है कि इनकी फसल में टमाटर की अधिक बार तुड़ाई (18–21) की जा सकती है तथा फसल तुड़ाई की अवधि बढ़ जाने से टमाटरों के बाजार मूल्य में होने वाले उतार–चढ़ाव की समस्या से निपटने में भी सहायता मिलती है।

आर्थिक लाभ

सब्जी बीज उद्योग में, विशेष रूप से निजी क्षेत्र के उद्यमियों का वर्चस्व है। भा.कृ.अनु.प.– भारतीय बागवानी अनुसंधान संस्थान ने भारत में तीन रोगों का प्रतिरोधी टमाटर का पहला सार्वजनिक एफ1 संकर विकसित किया है। इसके जारी किए जाने के वर्ष (2010) से इस तकनीक से कुल आर्थिक सरप्लस/लाभ 237.82 करोड़ रुपये हुआ है (वर्ष 2018 के मूल्य पर)। वर्ष 2017–18 के दौरान होने वाला वार्षिक लाभ 89.08 करोड़ रुपये था। उपभोक्ताओं तथा उत्पादकों के बीच इस लाभ का बंटवारा 68:32 के अनुपात में हुआ। इसे अपनाए जाने की गति में तेजी लाने के लिए भा.कृ.अनु.प.–भारतीय बागवानी अनुसंधान संस्थान गैर–विशिष्टता के आधार पर बीज कंपनियों को जनक वंशक्रम उपलब्ध करा रहा है तथा इन दोनों संकरों के जनकों का 12 बीज कंपनियों को लाइसेंस दिया गया है और इस प्रकार संस्थान प्रति वर्ष 34 लाख रुपये अर्जित कर रहा है।

सजीव क्षीणीकृत पीपीआर टीका

प्रौद्योगिकी की रुपरेखा

पेस्टे–डेस–पेटिट्स रूमिनेंट्स (पीपीआर) भेड़ और बकरियों का एक गहन संक्रामक रोग है तथा इसे छोटे रोमंथियों के पालन के मार्ग में स्वास्थ्य संबंधी सबसे महत्वपूर्ण बाधाओं में से एक माना गया है। भा.कृ.अनु.प.–भारतीय पशु चिकित्सा अनुसंधान संस्थान में वर्ष 1997–2001 की अवधि के दौरान इस रोग के विरुद्ध सजीव–क्षीणीकृत टीका (ओआईई मानकों के अनुसार) विकसित किया गया था। इस सजीव पीपीआर टीके के उत्पादन में काँच के पात्र/डिस्पोजेबल प्लास्टिक के पात्रों (स्थिर तथा लुढकने वाली, दोनों प्रकार की बोतलों) में वेरो कोशिकाओं का कल्चर किया जाना शामिल है। इसके लिए साधारण वाणिज्यिक माध्यमों और सीरम तथा संक्रमण से युक्त टीका बीज विषाणु का उपयोग किया जाता है। भा.कृ.अनु.प.–भारतीय पशु चिकित्सा अनुसंधान संस्थान द्वारा विकसित यह टीका भारत के बाहर तैयार किए जाने वाले इसी के समान टीकों की तुलना में सस्ता है।

अपनाए जाने वाले क्षेत्र

देश में इस टीके की बहुत माँग है और इसकी माँग बनी भी रहेगी, क्योंकि भारत सरकार ने पीपीआर नियंत्रण कार्यक्रम आरंभ किया है। वैश्विक स्तर पर वैश्विक पीपीआर अनुसंधान सहयोग तथा अन्य अंतरराष्ट्रीय एजेंसियों के सहयोग से पीपीआर के नियंत्रण का आंदोलन चलाया जा रहा है। एशिया तथा अफ्रीकी देशों की कई अन्य सरकारों ने भी सामुदायिक स्तर पर टीकाकरण अभियान के द्वारा पीपीआर के नियंत्रण का कार्य आरंभ किया है। इसके अंतर्गत पूरे विश्व में इस टीके के गहन उपयोग को प्रोत्साहित किया जाता है। यह प्रौद्योगिकी अनेक फार्मास्यूटिकल और अनुसंधान संगठनों जैसे इंडियन इम्यूनोलॉजिकल्स, इंटरवेट, हेस्टर बायोसाइंसिस, बायोमेड प्राइवेट लिमिटेड, आईएएसवीबी, केरल और आईएसवीबी, कर्नाटक को हस्तांतरित की गई है। अनेक राज्यों जैसे महाराष्ट्र, हरियाणा और पश्चिम बंगाल के पशुपालन विभाग भी इस प्रौद्योगिकी का उपयोग कर रहे हैं। इंडियन इम्यूनोलॉजिकल्स इस टीके के प्रमुख विक्रेता हैं क्योंकि यह कंपनी देश में बेचे जाने वाले टीके की कुल खुराकों में से 90 प्रतिशत से अधिक खुराकें (लगभग 5 करोड़) बाजार में ला चुकी है। यह टीका वर्ष 2007–08 से देश के कई राज्यों में सार्वजनिक और निजी, दोनों एजेंसियों द्वारा बाजार में बेचा जा रहा है।

मुख्य लाभ

पीपीआर पशुओं का एक ऐसा मुख्य तथा गहन संक्रामक रोग है जिसका नियंत्रण प्राणिरुजा (एंजूटिक) देशों में गरीबी के उन्मूलन के लिए महत्वपूर्ण माना गया है। नवीनतम आकलनों के अनुसार वर्ष 2017 में पीपीआर के कारण होने वाली सापेक्ष आर्थिक हानि लगभग 4,600 करोड़ रुपये थी। चूंकि पीपीआर एक ऐसा रोग है जो किसी एक देश की सीमा तक ही सीमित नहीं है, अतः पीपीआर के उन्मूलन से पूरे विश्व के करोड़ों निर्धन किसानों की खाद्य एवं पोषणिक सुरक्षा होगी, उनकी आय बढ़ेगी तथा आजीविका में भी सुधार होगा।

आर्थिक लाभ

वर्ष 1997 (अनुसंधान परियोजना के आरंभ के वर्ष) से वर्ष 2030 (जब ओ/ई/एफएओ विशिष्टताओं के अनुसार सभी (शत प्रतिशत) छोटे रोमंथियों का टीकाकरण हो जाएगा) की अवधि के लिए अनुसंधान तथा टीका प्रदानीकरण की लागत से होने वाले कुल आर्थिक सरप्लस का आकलन किया गया है। पीपीआर के विरुद्ध भेड़ और बकरियों के टीकाकरण से कुल सरप्लस में प्रतिवर्ष 8,253 करोड़ रुपये के आर्थिक लाभ का अनुमान लगाया गया है। अध्ययनों से यह स्पष्ट हुआ है कि टीकाकरण कार्यक्रम से वर्ष 2018–19 के दौरान 11,673 करोड़ रुपये का आर्थिक सरप्लस/लाभ प्राप्त हुआ है तथा इसमें वर्ष 2030 तक 18,310 करोड़ रुपये की वृद्धि की अपेक्षा की जाती है। आंतरिक लाभ दर एवं लाभ–लागत अनुपात क्रमशः 119% एवं 123:1 थे।

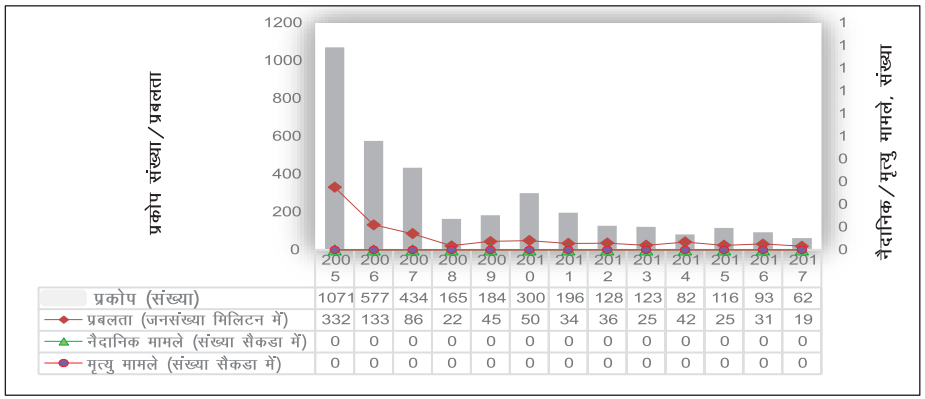

	2005	2006	2007	2008	2009	2010	2011	2012	2013	2014	2015	2016	2017
प्रकोप (संख्या)	1071	577	434	165	184	300	196	128	123	82	116	93	62
प्रबलता (जनसंख्या मिलिटन में)	332	133	86	22	45	50	34	36	25	42	25	31	19
नैदानिक मामले (संख्या सैकडा में)	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0
मृत्यु मामले (संख्या सैकडा में)	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0

वर्ष 2007–08 में पीपीआर टीके की शुरूआत से लेकर 2005–16 की अवधि के दौरान भारत में पीपीआर के प्रकोप की प्रवृत्तियां

भा.कृ.अनु.प.–आईवीआरआई क्रिस्टोस्कोप

प्रौद्योगिकी की रुपरेखा

प्रक्षेत्र दशाओं के अंतर्गत डेरी पशुओं में गर्भाधान का असफल होना एक सामान्य समस्या माना गया है। पशुओं के प्रजनन में किसी भी प्रकार की देरी होने से डेरी पशुओं के गर्भधारण में देरी होती है तथा मदचक्र भी नहीं हो पाता है जिसके परिणामस्वरूप पशु पालक किसानों तथा डेरी स्वामियों को बहुत हानि होती है। मदचक्र की कारगर और सटीक पहचान अधिकांश डेरी पशुओं/झुंडों में उत्पादन को सीमित करने वाले सर्वाधिक महत्वपूर्ण कारकों में से एक है। भा.कृ.अनु.प.–भारतीय पशु चिकित्सा अनुसंधान संस्थान में 'भा.कृ.अनु.प.–आईवीआरआई क्रिस्टोस्कोप' नामक एक साधारण तथा कम लागत वाली युक्ति विकसित की है जिससे पशुओं में सर्वाधिक गर्भधारण दर प्राप्त करने के लिए प्रजनन का उपयुक्ततम समय ज्ञात किया जा सकता है। इस उपकरण का उपयोग गर्भ ग्रीवा श्लेष्मा (सर्वाइकल म्यूकस) के विशेष प्रकार के फर्न पैटर्न को देखने के लिए किया जाता है जो उर्वर मदचक्र या डिम्ब जनन की सूचक गर्मी के दौरान पशुओं में देखा जाता है। जब पशुओं में यह विशेष प्रकार का फर्न पैटर्न देखा जाए तो उनमें गर्भधारण करने की लगभग 62.5 प्रतिशत सफलता दर देखी गई है। जबकि वर्तमान में चल रहे गर्भाधान कार्यक्रम के अंतर्गत गर्भधारण की औसत दर मात्र 35.29 प्रतिशत है।

अपनाए जाने वाले क्षेत्र

यह प्रौद्योगिकी पाँच कंपनियों को वाणिज्यिकृत की गई है। देश के बाजारों में लगभग 29,000 क्रिस्टोस्कोप बेचे जा चुके हैं जिनसे भारतीय पशु चिकित्सा अनुसंधान संस्थान को 25 लाख रुपये का राजस्व प्राप्त हुआ है। इस क्रिस्टोस्कोप का उपयोग देश के सभी दुधारू पशुओं के लिए किया जाए, ऐसा लक्ष्य निर्धारित किया गया है।

लक्षित लाभार्थी और मुख्य लाभ

यह प्रौद्योगिकी छोटे तथा बड़े दोनों प्रकार के डेरी स्वामियों के लिए अत्यधिक महत्वपूर्ण है। डेरी गोपशुओं में गर्मी (मदचक्र) की सटीक और समय पर पहचान एक श्रेष्ठ जननात्मक प्रबंध कार्यक्रम का सबसे महत्वपूर्ण और अनिवार्य घटक है। गर्मी की ठीक से पहचान न होने से डेरी पशुओं से मिलने वाला लाभ प्रभावित होता है। ऐसा होने पर पशुओं के शिशु–जनन में अंतराल बढ़ जाता है, दुग्धोत्पादन काल कम हो जाता है तथा कम शिशुओं का जन्म होता है। जो प्रजननशील गाएं गर्भाधान के लिए उपयुक्त नहीं होती हैं उनके कारण पशुओं की कुल गर्भधारण दर कम हो जाती है तथा बीज (वीर्य) और समय, दोनों नष्ट हो जाते हैं। मदचक्र को सटीक रूप से न पहचानने तथा गर्भधारण की कम दर, दोनों के कारण सामान्य गायें निर्बल हो जाती हैं। जिन गायों की गर्मी की गलत पहचान होती है

क्रिस्टोस्कोप
स्रोत : पशु पालन विभाग

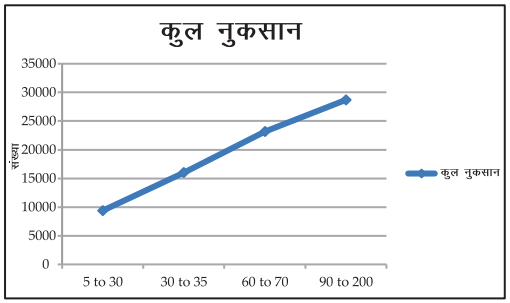

दुधारू पशुओं में बी/डब्ल्यू दिनों के खुले होने तथ आर्थिक हानि का पारस्परिक संबंध

या यदि वे गर्भित हों तो भी उनका गर्भाधान करा दिया जाए, तो गर्भपात भी हो सकता है।

आर्थिक लाभ

प्रति गर्भाधारण के लिए गर्भाधान हेतु औसतन कितने संभोग की आवश्यकता होगी, यह प्रजनन की विधि तथा डेरी पशुओं की आयु पर निर्भर करता है। जिन पशुओं के मामले में क्रिस्टोस्कोप का उपयोग नहीं हुआ (3.6–5.2) उनकी तुलना में जिन पशुओं में भा.कृ.अनु.प.–आईवीआरआई क्रिस्टोस्कोप का उपयोग हुआ (2.5–3.4), उनमें गर्भधारण में औसत विलंबित दिनों की संख्या भी कम थी। इसके साथ ही यह भी देखा गया कि जिन पशुओं में इस तकनीक का उपयोग नहीं हुआ उनमें यह अवधि 56–67 दिन थी जबकि जिन पशुओं में इस तकनीक का उपयोग हुआ उनमें यह अवधि कम (36–38 दिन) थी।

क्रिस्टोस्कोप का उपयोग करके सकल प्रक्षेत्र स्तर पर क्षमता में होने वाली हानि (दूध प्राप्ति में होने वाली कमी और अवसर लागत, हल्का अतिरिक्त आहार, श्रम, उपचार तथा प्रजनन की लागत) से बचा जा सकता है और इससे देश को प्रतिवर्ष 27,102 करोड़ रुपये का लाभ हो सकता है। मदचक्र की अगेती पहचान करके प्रति पशु होने वाला वार्षिक आर्थिक लाभ अनुमानतः 2,965.55 रुपये रहा है। क्रिस्टोस्कोप का उपयोग करके उपयुक्ततम प्रजनन समय का पता लगाया जा सकता है तथा गर्भधारण में विलम्ब होने या इसके असफल होने के कारण होने वाली हानि को बहुत कम किया जा सकता है। इस तकनीक से वर्ष 2004–2025 की अवधि के दौरान अनुमानतः लगभग 51,325 करोड़ रुपये के कुल आर्थिक सरप्लस के सृजित होने (परिकल्पित स्वरूप में) की संभावना है (वर्ष 2018 के मूल्यों पर)। वर्ष 2018 के मूल्यों पर त्रैवार्षिकी 2018–19 के लिए अनुमानित आर्थिक सरप्लस 2,333 करोड़ रुपये था। ■■

टीकों और नैदानिकी के माध्यम से पशुधन में रिंडरपेस्ट का उन्मूलन

प्रौद्योगिकी की रुपरेखा

रिंडरपेस्ट सदियों से भारत में बनी रहने वाली समस्या रही है जिससे गोपशु, जंगली भैंसें, नील गाय तथा भेड़, बकरियाँ और सूअर भी संक्रमित होते हैं। इसके नियंत्रण के सघन अंतरराष्ट्रीय अभियानों से विश्व में इस रोग के उन्मूलन में सहायता मिली है। कई पीढ़ियों के लिए किए गए ये सतत प्रयास अनेक संगठनों के सृजन के कारण संभव हुए हैं क्योंकि इनका प्राथमिक उद्देश्य रिंडरपेस्ट रोग का उन्मूलन करना था। ऐसे संगठनों में पशु स्वास्थ्य के लिए विश्व संगठन (ओआईई), खाद्य एवं कृषि संगठन (एफएओ) तथा भारतीय पशु चिकित्सा अनुसंधान संस्थान (आईवीआरआई) शामिल हैं। रिंडरपेस्ट पशुओं का पहला ऐसा संक्रामक रोग है जिसका विश्व स्तर पर उन्मूलन किया जा चुका है और ऐसा न केवल पालतू पशुओं के मामले में हुआ है बल्कि वन्य पशुओं में भी हुआ है।

रिंडरपेस्ट उन्मूलन का प्रभाव

रिंडरपेस्ट उन्मूलन कार्यक्रम के सफल कार्यान्वयन से अनेक आर्थिक लाभ प्राप्त हुए हैं। विशेष रूप से इस कार्यक्रम से छोटे और सीमांत पशुपालक तथा भूमिहीन मजदूर लाभ लेने में सफल हुए हैं। रिंडरपेस्ट उन्मूलन के लिए तीन महत्वपूर्ण कार्यक्रम लागू किए गए हैं, वर्ष 1954 में राष्ट्रीय रिंडरपेस्ट उन्मूलन कार्यक्रम (एनआरईपी); वर्ष 1983 में रिंडरपेस्ट उन्मूलन के लिए कार्यबल; और वर्ष 1992 में रिंडरपेस्ट उन्मूलन पर राष्ट्रीय कार्यक्रम (एनपीआरई)।

वास्तविक परिदृश्य से प्रतितथ्यात्मक की तुलना करने पर यह पाया गया कि वर्ष 1954 में एनआरईपी की शुरूआत में किए गए निवेश से होने वाला लाभ वर्ष 1956–57 में 157.6 करोड़ रुपये था जोकि 1994–95 में 693.3 करोड़ रुपये रहा (चित्र 1 व 2)। इस प्रकार, वर्षावधि 1956–57 से 1994–95 के दौरान होने वाला औसत निवल लाभ 379.3 करोड़ रुपये था (1995 के मूल्यों पर)। रिंडरपेस्ट के नियंत्रण के लिए इस अवधि के दौरान टीकाकरण कार्यक्रम में हुए निवेश के परिणामस्वरूप प्राप्त होने वाला लाभ–लागत अनुपात 43:1 था। रिंडरपेस्ट के उन्मूलन (1992 में एनपीआरई की शुरूआत के कारण) के फलस्वरूप भारत की पशुधन उत्पादों के आयात पर निर्भरता में कमी आई और वास्तव में 1992–93 से 2018–19 की अवधि के दौरान दूध का निवल निर्यात 493.5 करोड़ प्रति वर्ष की दर से बढ़ा। रिक और साथी (2014) द्वारा किए गए एक अध्ययन में तब एनपीआरई में किए गए निवेश का लाभ व लागत अनुपात 64 : 1 रिपोर्ट किया गया जब पशुधन उत्पाद की निर्यात बाजार में पहुँच बढ़ी तथा एनपीआरई की आर्थिक व्यावहारिकता का पता लगाने पर इससे होने वाले लाभ का आकलन किया गया।

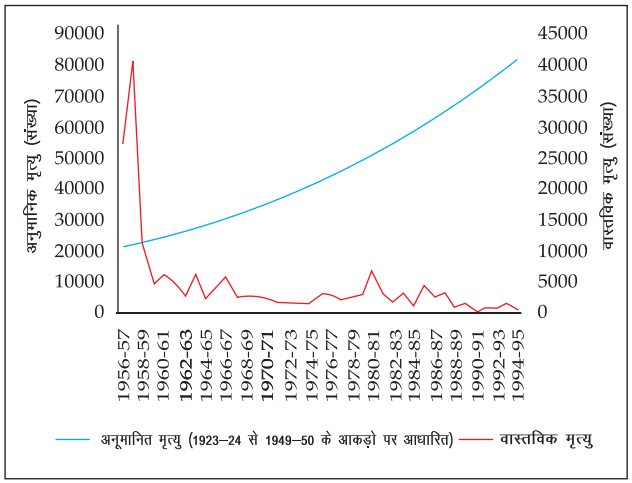

चित्र 1 : प्रक्षेपित मृत्यु (1923–24 से 1949–50 डेटासेट के आधार पर)
स्रोत : पशुपालन विभाग से प्राप्त आंकड़े

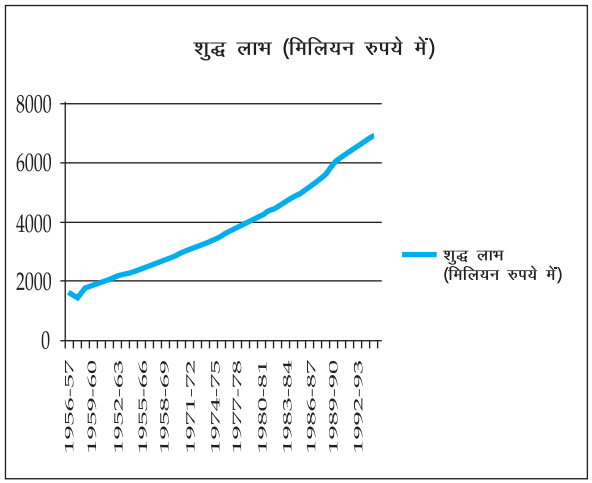

चित्र 2 : वर्ष 1954 में एनआरईपी के लागू होने के बाद होने वाले निवल लाभ बनाम वास्तविक मृत्यु (1954 में एनआरईपी के शुरू होने के बाद)

रिंडरपेस्ट के उन्मूलन का अप्रत्यक्ष लाभ

रोग निगरानी एवं निदान से संबंधित सुविधाओं का विकास जैसे कि प्रयोगशाला उपकरण तथा प्रयोगशाला कार्मिकों का प्रशिक्षण, आदि के उपयोग भविष्य में रोग को नियंत्रित करने/उन्मूलन करने के लिए किया जा सकता है। विशेष रूप से इससे ऐसा छोटा माडल तैयार हो सकता है जिससे कि पीपीआर और एफएमडी जैसे पशु रोगों को सीमा पार प्रसार को नियंत्रित किया जा सके।

दूध में मिलावट की शीघ्र जाँच

प्रौद्योगिकी की रुपरेखा

भारतीय खाद्य सुरक्षा एवं मानक प्राधिकरण (एफएसएसएआई) द्वारा वर्ष 2011 में दूध की गुणवत्ता पर किए गए सर्वेक्षण से यह संकेत मिला कि भारत में बेचे जाने वाला दूध गुणवत्ता मानक संस्तुतियों के अनुरूप नहीं होता है तथा यह डिटर्जेंट व अन्य अनेक रसायनों से संदूषित होता है। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए भा.कृ.अनु.प.–राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान, करनाल में वर्ष 2012–14 के दौरान दो प्रौद्योगिकियाँ विकसित की गईं, नामतः (i) दूध में सात संदूषकों (उदासीनीकारक, यूरिया, ग्लूकोज़, हाइड्रोजन परॉक्साइड, माल्टोडैक्सट्रिन, सूक्रोज, और लवण), तथा (ii) दूध में डिटर्जेंट का पता लगाने के लिए शीघ्र परिणाम देने वाला परीक्षण। कागज़–पट्टी परीक्षण को उपयोग में लाना बहुत सरल है क्योंकि इसमें दूध में एक पट्टी डुबोई जाती है तथा 30 सेकंड से लेकर 8.0 मिनट तक पट्टी के रंग में होने वाला परिवर्तन देखा जाता है। इन दोनों परीक्षणों की प्रौद्योगिकियाँ व्यापक स्तर पर उपयोग हेतु नौ वाणिज्यिक घरानों को हस्तांतरित की गई हैं।

अपनाए जाने वाले क्षेत्र

उत्तर प्रदेश (16.5 प्रतिशत), राजस्थान (12.7 प्रतिशत), मध्य प्रदेश (8.3 प्रतिशत), आंध्र प्रदेश (7.8 प्रतिशत), पंजाब (6.7 प्रतिशत), महाराष्ट्र (6.3 प्रतिशत), हरियाणा (5.6 प्रतिशत), बिहार (5.2 प्रतिशत) और कर्नाटक (4.1 प्रतिशत) स्थित अनेक प्रमुख डेरी प्रसंस्करण उद्योग जैसे मदर डेरी, साची मिल्क इंडस्ट्री, पंजाब राज्य सहकारी दुग्धोत्पादक फेडरेशन लिमिटेड, हरियाणा डेरी विकास सहकारी फेडरेशन लिमिटेड, राजस्थान सहकारी डेरी फेडरेशन लिमिटेड, आदि दूध की गुणवत्ता की जाँच के लिए इन परीक्षणों का उपयोग कर रहे हैं। वर्ष 2018 में इन 10 राज्यों में देश के कुल दुग्धोत्पादन का लगभग 73.4 प्रतिशत दूध का उत्पादन हुआ। वर्ष 2019 में 10 लाख दुग्ध परीक्षण किटें बाजार में उतारी गईं तथा इससे संगठित क्षेत्र में लगभग 33.53 प्रतिशत दूध में संदूषकों की मिलावट की जाँच की गई।

लक्षित लाभार्थी

डेरी सहकारिताएं, निजी/बहुराष्ट्रीय डेरी खाद्य उद्योग, कृषक उत्पादक संगठन (एफपीओ), फुटकर दूध विक्रेता/व्यापारी (दूधिये), छोटी और मझोली डेरी इकाइयाँ तथा उपभोक्ता इन प्रौद्योगिकियों का लाभ उठाने वाले प्रमुख संगठन हैं।

मुख्य लाभ

दूध की गुणवत्ता का परीक्षण करना अब बहुत आसान हो गया है। इन परीक्षणों से प्राप्त परिणाम विश्वसनीय होते हैं और ये तत्काल प्राप्त हो जाते हैं। ये परीक्षण किटें विद्यमान विधियों की तुलना में 50 प्रतिशत अधिक संवेदनशील और 60 प्रतिशत किफायती हैं। इनसे उपभोक्ताओं को भी लाभ होता है क्योंकि उन्हें पोषण से भरपूर गुणवत्तापूर्ण दूध मिलता है। इन विधियों के उपयोग से दूध में माल्टोडेक्सट्रिन, सूक्रोज, तथा ग्लूकोज़ के मिलावट की घटनाएं 39 प्रतिशत से घटकर 3.7 प्रतिशत और डिटर्जेंट के मिलावट की घटनाएं 8 प्रतिशत से घटकर 0.1 प्रतिशत रह गई हैं। ऐसा क्रमशः 2011 और 2018 में एफएसएसएआई द्वारा किए गए सर्वेक्षण के दो दौरों से सामने आया है। इस सफलता का कारण मुख्यतः उपरोक्त प्रौद्योगिकियों को अपनाना तथा नियंत्रण के उपायों को लागू करना है।

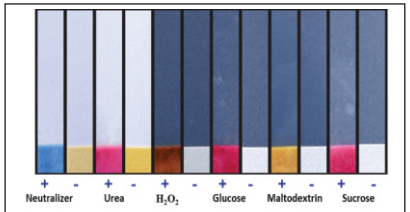

दूध में संदूषकों का पता लगाने के लिए परीक्षण के आधार पर कागज की पट्टी का रंग परिवर्तन

निचली परत का गुलाबी रंग से पीले रंग में परिवर्तित होना यह दर्शाता है कि नमूना संदूषित है

आर्थिक लाभ

संदूषकों (माल्टोडेक्सिट्रिन और डिटर्जेंट) या मिलावटी तत्वों में कमी आने के कारण देश के दूध उत्पादकों /उपभोक्ताओं/अन्य संस्थाओं को आर्थिक लाभ हुआ है। ऐसा दूध परीक्षण की लागत में कमी आने तथा दूध की गुणवत्ता सुनिश्चित होने के कारण हुआ है। डेरी उद्योग को होने वाली लागत में बचत प्रतिवर्ष अनुमानतः 3.8 करोड़ रुपये है। वर्ष 2018–19 में इस प्रौद्योगिकी के उपयोग से अनुमानतः 174.44 करोड़ रुपये का वार्षिक लाभ हुआ। यद्यपि, दूध की गुणवत्ता सुनिश्चित होने से समाज को होने वाला लाभ यहाँ दर्शाए गए लाभ की तुलना में बहुत अधिक हो सकता है। इस तकनीक से होने वाले स्वास्थ्य संबंधी कुछ प्रमुख लाभ हैं : उपभोक्ताओं में उच्च रक्तचाप, गुर्दा रोगों, त्वचा, आँखों तथा हृदय की समस्याओं तथा कैंसर जैसे रोगों में कमी आना। यह भी पाया गया है कि उपभोक्ता उस दूध का अधिक मूल्य (15 प्रतिशत) अदा करने के लिए तैयार हैं जिसकी गुणवत्ता का परीक्षण किया जा चुका है।

'सिफ्ट' महाजाल

प्रौद्योगिकी की रुपरेखा

महाजाल से मछली पकड़ना इसके अपने उपयोग की शुरूआत से ही, मछलियों को पकड़ने की एक स्थापित विधि रही है। महाजाल का मुख मूलतः शंक्वाकार गियर होता है जिसे पानी में बहाया जाता है। ऑटर बोर्ड की सहायता से जाल के मुख को क्षैतिज खुला रखा जाता है तथा फ्लोट और सिंकर की सहायता से इसे लम्बवत रखा जा सकता है। इन महाजालों को मध्य जल की तली में परिचालित किया जा सकता है तथा इन्हें एक या दो नौकाओं से चलाया और खींचा जा सकता है। इनके उपयोग की शुरूआत से अब तक भा.कृ.अनु.प.–सिफ्ट, कोच्चि में महाजाल की डिज़ाइन, बनावट तथा परिचालन में अनेक सुधार किये गए हैं। ये सुधार पकड़ी जाने वाली मछलियों के प्रकार, स्थानीय दशाओं, मछली पकड़ने के लिए इस्तेमाल किए गए ट्रॉलर के आकार एवं उसकी इंजन की शक्ति के अनुसार किए गए हैं। आरंभ में झींगा पकड़ने के महाजालों की डिज़ाइन पर विशेष ध्यान दिया गया जिसका कारण झींगों के आर्थिक महत्व तथा उनका निर्यात मूल्य था। बाद में धीरे–धीरे डिज़ाइन में इस प्रकार का सुधार किया गया कि महाजाल का उपयोग झींगे और मछलियाँ, दोनों को पकड़ने के लिए किया जा सके। इसके लिए अधिक खुले महाजालों, अर्ध–पेलेजिक महाजालों तथा छोटे, मझोले व बड़े पोतों के लिए महाजाल के डिज़ाइन तैयार करने के लिए किया गया। महाजाल की निचली रस्सी पर लंबे पंखों के साथ–साथ मोटी श्रृंखला के जुड़ाव का प्रभाव ऐसी सफल खोज थे जिनका उपयोग महाजाल में झींगों की पकड़ को बढ़ाने के लिए हुआ। महाजाल पर खिंचाव को कम करने तथा शक्ति के प्रभावी उपयोग के लिए इसमें और सुधार भी किए गए।

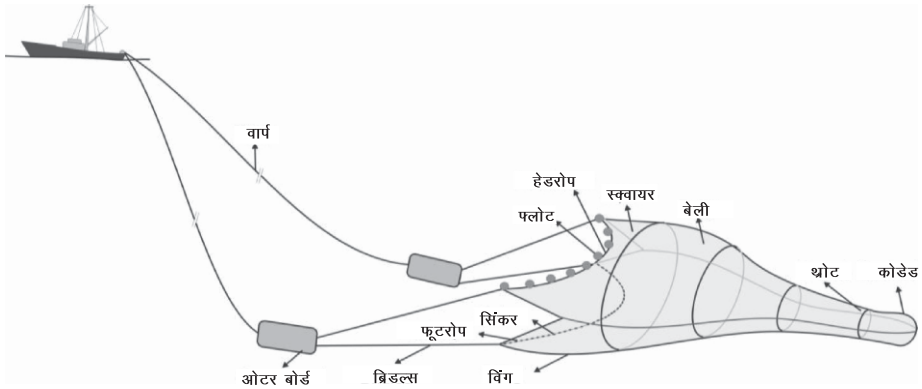

अपनाए जाने वाले क्षेत्र

महाजाल के उपयोग से जालों को पानी में हाथ से फेंकी जाने वाली परंपरागत विधि अब पूरी तरह समाप्त हो चुकी है और इसका स्थान रेडीमेड जाल डालने की विधि ने ले लिया है। जाल बनाने वाला उद्योग मछुआरों की जाल छिद्रों के अलग–अलग आकार संबंधी आवश्यकताओं को पूरा करने में सक्षम है। देश में महाजालों की बढ़ती हुई संख्या के कारण श्रेष्ठ डिजाइन वाले रेडीमेड महाजालों की बहुत माँग है। पिछले कई वर्षों के दौरान जाल बुनने वाले अनेक संगठन स्थापित हो चुके हैं तथा जाल बुनने की सामग्री में होने वाली बर्बादी को कम–से–कम रखते हुए महाजाल के डिजाइन तैयार करने व उन्हें बुनने की कला में इन संगठनों ने विशेषज्ञता प्राप्त कर ली है।

लक्षित लाभार्थी और मुख्य लाभ

इस प्रौद्योगिकी का उद्देश्य समुद्र की तली व मध्य जल से झींगों और मछलियों को पकड़ने के लिए महाजाल का उपयोग करना है। यह प्रौद्योगिकी छोटे, मझोले और बड़े, सभी प्रकार के पोतों के लिए उपयुक्त है। इन महाजालों से पकड़ी गई मछलियों और झींगों की घरेलू तथा अंतरराष्ट्रीय बाजारों में बहुत माँग है। उन्नत चयनशीलता तथा पर्यावरण पर पड़ने वाले नकारात्मक प्रभाव को कम करते हुए संस्थान द्वारा महाजाल की नई–नई डिज़ाइनें विकसित की गई हैं, ताकि जैवविविधता व पर्यावरण की रक्षा हो सके और मात्स्यिकी संसाधनों का दीर्घावधि टिकाऊपन सुनिश्चित हो सके।

आर्थिक प्रभाव

ट्रॉलर या महाजाल भारतीय समुद्री मात्स्यिकी क्षेत्र की सर्वाधिक महत्वपूर्ण प्रौद्योगिकियों में से एक है। इसका मुख्य लाभ, इसके समान एक अन्य निकटतम वैकल्पिक प्रौद्योगिकी जैसे गलफड़ा जाल (गिलनेटिंग) की तुलना में समुद्री झींगों और मछलियों की पकड़ में वृद्धि है। समुद्री झींगों और डेमर्सल मछलियों के लिए महाजाल की पकड़ या ट्रॉलर सर्वाधिक प्रभावी मत्स्यन विधि है। वर्ष 2017–18 में इस प्रौद्योगिकी से 4,588.8 करोड़ रुपये का आर्थिक सरप्लस सृजित हुआ (वर्ष 2018 के मूल्यों पर) जिसमें से उपभोक्ताओं और उत्पादकों को प्राप्त होने वाला लाभ का हिस्सा लगभग बराबर है। वर्ष 2000–01 से 2017–18 की अवधि के दौरान सृजित होने वाले आर्थिक सरप्लस का वर्ष 2018 के मूल्यों पर निवल वर्तमान मूल्य 1,28,098 करोड़ रुपये है।

मत्स्यन पोत

प्रौद्योगिकी की रुपरेखा

मत्स्यन पोतों को आवश्यकता के अनुकूल बनाकर तथा मशीनरी डिजाइन में सुधार करके परिचालन लागत में उल्लेखनीय कमी की जा सकती है। यह डिज़ाइन ऐसी होनी चाहिए जिसमें ईंधन की बचत होती हो। वाणिज्यिक मत्स्यन पोत की मानकीकृत डिज़ाइन नहीं होने के कारण परिचालन लागत बहुत बढ़ जाती है तथा असंगठित क्षेत्रों में मत्स्यन पोतों के निर्माण की लागत भी अधिक आती है। इसके अलावा पोत पर प्रशीतित सागर जल (आरएसडब्ल्यू) भंडारण के लिए सुविधा उपलब्ध कराने से मछलियों की गुणवत्ता में सुधार होता है तथा मछुआरों की आमदनी भी बढ़ जाती है। भा.कृ.अनु.प.–केन्द्रीय मत्स्य प्रौद्योगिकी संस्थान में गोवा शिपयार्ड लिमिटेड, रक्षा मंत्रालय, भारत सरकार के सहयोग से एक बहुउद्देशीय मत्स्यन पोत का विकास किया गया है जिसे सागर हरिता कहते हैं।

पोत में लगाए गए जलदाब युक्त डेक से इस पोत से मत्स्यन संबंधी कार्यों को दक्षतापूर्ण ढंग से सम्पन्न करने में सफलता मिलती है और इस प्रकार, पोत की कार्य कुशलता में सुधार होता है। इस पोत में आरएसडब्ल्यू भी होता है। इस डिज़ाइन को भारतीय जहाजरानी एवं निर्माण के रजिस्टर द्वारा अनुमोदित किया गया है। अनेक दिनों तक मत्स्यन संबंधी कार्यों के लिए भा.कृ.अनु.प.–केन्द्रीय मत्स्य प्रौद्योगिकी संस्थान द्वारा गहरे सागर में मछली पकड़ने संबंधी किए गए फील्ड परीक्षणों के परिणामों से यह प्रदर्शित हुआ है कि इस क्षेत्र में प्रयुक्त होने वाले इसी प्रकार के मत्स्यन पोतों की तुलना में इस पोत का उपयोग बहुत अधिक दिवसों तथा विभिन्न दशाओं में किए जाने से मत्स्यन में 15–20 प्रतिशत की बचत होती है।

अपनाए जाने वाले क्षेत्र

ईंधन की खपत में उल्लेखनीय कमी आने/बचत होने से देश के विभिन्न सरकारी विभागों ने भा.कृ.अनु.प.–केन्द्रीय मत्स्य प्रौद्योगिकी संस्थान को तकनीकी मानक ('नीली क्रांति योजना' के अंतर्गत 22–23 मी. लंबे लाइनर कम गिलनेटर) तैयार करने का कार्य सौंपा है, ताकि एजेंसियों द्वारा यह तकनीक खरीदी जा सके। निर्धारित क्रियाविधियाँ अपनाते हुए कोचीन शिपयार्ड को इस योजना के अंतर्गत संस्थान ने 16 पोतों के निर्माण का उत्तरदायित्व सौंपा है। भा.कृ.अनु.प.–केन्द्रीय मत्स्य प्रौद्योगिकी संस्थान द्वारा तमिल नाडु में मछुआरों के उपयोग के लिए 22.50 मी. लंबे लाइनर कम गिलनेटर युक्त इस पोत के डिज़ाइन के लिए मैसर्स कोचीन शिपयार्ड लिमिटेड के साथ एक समझौता ज्ञापन (एमओयू) पर हस्ताक्षर किए हैं। पहले आठ पोतों का निर्माण कार्य पूरा हो गया है तथा इन्हें सागर में अवतरित कर दिया गया है और अब इनसे वाणिज्यिक स्तर पर मत्स्यन का कार्य सफलतापूर्वक किया जा रहा है। तमिल नाडु सरकार ने भी 60 गिलनेटर कम लोंग लाइनर पोतों के निर्माण के लिए 7 वाणिज्यिक नौका निर्माताओं की छंटाई कर ली है।

लक्षित लाभार्थी तथा मुख्य लाभ

गहरे सागर में एफवी सागर हरिता

हमारे देश के समुद्र तट पर बसे सभी राज्यों में कार्यरत वाणिज्यिक मछुआरों को इस प्रौद्योगिकी का लाभार्थी लक्षित किया गया है। रामेश्वरम, तमिल नाडु के ट्रॉलर को लंबे लाइनर कम गिलनेटर में परिवर्तित करने की आवश्यकता है, ताकि इस ट्रॉलर के द्वारा श्रीलंका की सीमा को पार करने से संबंधित मुद्दों को हल किया जा सके। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए नीली क्रांति योजना के कार्यान्वयन में तमिल नाडु के वाणिज्यिक मछुआरों को प्राथमिकता दी गई। इस पोत से होने वाले प्रमुख लाभ हैं : ट्रॉलिंग की लागत कम होना, श्रीलंका के साथ मुद्दों का सुलझना, ईंधन की बचत, संयुक्त मत्स्यन जिससे वाणिज्यिक मछुआरों को मछलियाँ पकड़ने की दशा को सुधारने का अवसर मिलता है। इसके साथ ही पकड़ी गई मछलियों की गुणवत्ता सुधर जाती है तथा शिशु मछलियों को पकड़ने से बचा जा सकता है।

आर्थिक प्रभाव

आर्थिक लाभों में मत्स्यन की लागत में कमी आना, जीवाश्म ईंधन (डीज़ल) की बचत तथा ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन के संदर्भ में पर्यावरण को होने वाले लाभ शामिल हैं। वर्ष 2016–17 में वाणिज्यीकरण के बाद के चार वर्षों की अवधि के दौरान सृजित आर्थिक सरप्लस का निवल वर्तमान मूल्य अनुमानतः 169 करोड़ रुपये है। वर्ष 2012–13 में परियोजना के आरंभ होने के बाद से 25 वर्षों की अवधि के दौरान होने वाले सक्षम लाभ की राशि लगभग 4,854 करोड़ रुपये हो सकती है (वर्ष 2018 के मूल्यों पर)। इसके साथ ही वार्षिक औसत सरप्लस 194 करोड़ रुपये आता है। यदि यह तकनीक 50 प्रतिशत प्रक्षेत्र पर अपनायी जाती है, तो इसके अपनाए जाने के स्तर पर 145 मिलियन लीटर डीजल पर खर्च होने वाली धनराशि की बचत होगी जिसका वर्तमान में बाजार मूल्य के आधार पर 1,019 करोड़ रुपये प्रतिवर्ष होगा। इस प्रौद्योगिकी के कारण लगभग 0.38 मिलियन टन कार्बन डाइऑक्साइड की बचत होगी जिसका मूल्य लगभग 3,193 करोड़ रुपये है। इस प्रौद्योगिकी का मत्स्यन की लागत कम करने, जीवाश्म ईंधन की बचत करने तथा कार्बन उत्सर्जन को कम करने में उल्लेखनीय योगदान है। ■■

जयंती रोहू मछली

प्रौद्योगिकी की रुपरेखा

जयंती रोहू मछली, रोहू (लेबियो जातियां) की एक उन्नत प्रभेद है जिसका विकास वर्ष 1992 में आरंभ किए गए चयनशील प्रजनन कार्यक्रम के माध्यम से किया गया था। इसे सर्वप्रथम 1997 में जारी किया गया और इसके बाद प्रत्येक वर्ष इसके उन्नत संस्करण जारी किए गए। स्थानीय रोहू की तुलना में इसके लाभ हैं: अपेक्षाकृत तीव्र वृद्धि, फसल की कम अवधि, एरोमोनास और एरोमोनासिस रोगों के विरुद्ध प्रतिरोधक क्षमता का विकास। जयंती रोहू का एक लाभ और भी है कि आनुवंशिक प्राप्ति के कारण इसकी वृद्धि बेहतर होती है तथा अपघटित स्टॉक की गुणवत्ता भी पुनः स्थापित हो जाती है। स्थानीय स्तर पर उत्पन्न नस्ल की तुलना में यह विकास की अवधि 53 दिन (18%) तथा बीज पालन अवधि को 17.4% तक कम करता है। रोहू के स्थानीय रूप से उत्पन्न प्रभेद की तुलना में इसका एक अन्य लाभ यह भी है कि लागत में भी 20.1 प्रतिशत की कमी आती है तथा प्राप्ति भी 23.6 प्रतिशत बढ़ती है।

अपनाए जाने वाले क्षेत्र

जयंती रोहू को मुख्यतः ओडिशा, आंध्र प्रदेश, पश्चिम बंगाल और असम राज्यों में अपनाया जा रहा है। हालाँकि इसका प्रदर्शन भारत के अन्य सभी भागों में भी किया गया था। वर्तमान में इसकी नौ प्रगुणन इकाइयाँ हैं जोकि पूरे देशभर में फैली हुई हैं। वर्ष 2010–2018 की अवधि के दौरान सीआईएफए द्वारा इस प्रभेद का 198.2 मिलियन मछली बीज वितरित किया गया और ऐसा अनुमान है कि वर्ष 2018–19 के दौरान 18.24 हजार हैक्टर क्षेत्रफल के जलजंतु पालन तालाबों में जयंती रोहू का पालन हुआ। वर्ष 2016 से राष्ट्रीय मात्स्यकी विकास मंडल के राष्ट्रीय मीठाजल ब्रूड बैंक की इस प्रौद्योगिकी का मछली स्फुटनशालाओं तक प्रचार–प्रसार करने में मुख्य भूमिका रही है। वर्ष 2019 में राष्ट्रीय मात्स्यिकी विकास बोर्ड द्वारा देशभर में 230 मिलियन मछली बीज वितरित किया गया। वर्तमान में 1216 मिलियन मछली बीज से 182.4 मत्स्य तालाबों में मत्स्य शिशु विकसित किए जा रहे हैं और इनसे लगभग 1.1 लाख टन मछली उत्पादन हो रहा है जोकि देश में कुल रोहू मछली उत्पादन का 11 प्रतिशत है।

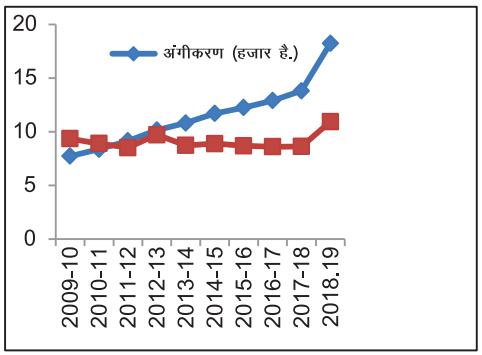

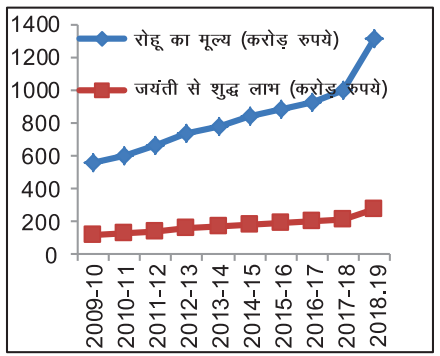

लक्षित लाभार्थी और मुख्य लाभ

1900 के आरंभ से प्रेरित प्रजनन द्वारा मछली बीज उत्पादन से अधिकांश मछली स्फुटनशालाओं ने अपने ब्रूड स्टॉक को प्रतिस्थापित नहीं किया जिससे मछलियों के उत्पादन में वृद्वि नहीं हो सकी। ये प्रयास किए गए कि इस ब्रूडस्टॉक को देश में सभी स्तरों पर बेहतर निष्पादन करने वाले ब्रूडस्टॉक से प्रतिस्थापित किया जाए। इस दृष्टि से देश के सभी भागों में जयंती रोहू मछली के बीज की बहुत माँग है। यह प्रौद्योगिकी छोटे तथा बड़े दोनों प्रकार के मछली पालकों के लिए उपयुक्त है और इन दोनों श्रेणियों के मछुआरों को लाभ हुआ है। इसके अलावा यह प्रौद्योगिकी बहु जलजंतुपालन की दशाओं के लिए भी उपयुक्त है। इसके साथ ही इसे वाणिज्यिक स्तर पर अपनाए जाने के अलावा घर के आस–पास छोटे पैमाने पर मछली पालन व निम्न लवणीय जल क्षेत्रों में मछली पालन के लिए भी इसका उपयोग किया जा सकता है। मछली प्रग्रहण के लिए इस प्रभेद को अपनाने से समयावधि में 56 दिन की कमी आती है। यह इस प्रौद्योगिकी का प्रमुख लाभ है। क्योंकि इसके कारण मछली पालन के लिए मछुआरों को दो सर्वाधिक सूखे महीनों (मई–जून) का सामना नहीं करना पड़ता है। इसके अतिरिक्त उत्पादन की लागत में भी कमी आती है तथा मछुआरों को मानसून आने से पहले स्टॉक संबंधी पूर्व कार्यों की तैयारी का भी पर्याप्त समय मिल जाता है।

आर्थिक लाभ

जयंती रोहू मछली के पालन से उत्पादन लागत 12 रुपये प्रति कि.ग्रा. तथा 72,000 रु. प्रति हैक्टर की कमी आना मछली पालकों के स्तर पर होने वाले आर्थिक लाभ हैं। इसकी प्राप्ति के कारण वाणिज्यिक मछली पालकों को पर्याप्त लाभ होता है जो मछली पालक के लिए औसतन 30,000 रु. प्रति है. तक हो सकता है। अधिकांश बड़े वाणिज्यिक मछली पालक कम समय में बाजार तक पहुँचने के लिए इन प्रौद्योगिकियों को अपना रहे हैं जिससे लागत में बचत होने के साथ–साथ पूँजी पर अदा किए जाने वाले ब्याज में भी कमी आती है। जयंती रोहू मछली का वार्षिक बाजार मूल्य 1,313 करोड़ रुपये है जिसमें से इस प्रौद्योगिकी से होने वाला लाभ लगभग 275 करोड़ रुपये है। कुछ धारणाओं के अनुसार आर्थिक सरप्लस का वर्तमान निवल मूल्य जयंती रोहू के मामले में 1992 से 2018 की अवधि के दौरान 2,547 करोड़ रुपये रहा तथा वर्ष 2018 में यह 110 करोड़ रुपये था (वर्ष 2018 के मूल्यों पर)। भविष्य में होने वाला आर्थिक सरप्लस (2020–30) अनुमानतः 1,931 करोड़ रुपये हो सकता है।

खुले सागर (ओपन सी) में पिंजरा मत्स्य पालन

प्रौद्योगिकी की रुपरेखा

पिंजरा मछली पालन एक कम आयतन व उच्च घनत्व की मछली पालन प्रणाली है जिसमें समुद्री मछली उत्पादन को बढ़ाने की बहुत क्षमता है। इस किफायती देशी प्रौद्योगिकी के विकास तथा अधिक मूल्य वाली मछलियों के लिए मछली बीज उत्पादन की तकनीकों की खोज तथा भा.कृ.अनु.प.–केन्द्रीय समुद्री मात्स्यकी अनुसंधान संस्थान द्वारा प्रदर्शित मछली पालन की तकनीकों के कारण मछली पालन की प्रौद्योगिकी के प्रभावी रूप से अपनाए जाने तथा इसके विस्तार में काफी सुविधा हुई है। पिंजरे में मछली पालन से परंपरागत समुद्री मछली पालन प्रणालियों की तुलना में मछलियों की 40 गुनी अधिक उपज प्राप्त होती है।

अपनाए जाने वाले क्षेत्र

पिंजरे में मछली पालन की तकनीक को सभी समुद्र तटीय राज्यों तथा संघ शासित प्रदेशों में सागरीय तथा तटवर्तीय जल क्षेत्रों में अपनाया जा सकता है। देश में पिंजरा में मछली पालन की इकाइयों की संख्या 2014–18 की अवधि के दौरान 500 से बढ़कर 5,000 हो गई है। उपयुक्त स्थलों में पिंजरे में मछली पालन की तकनीक के माध्यम से अधिक मूल्य वाली मछलियों की उत्पादन क्षमता 10 लाख टन है। वर्ष 2030 तक इसका अनुकूलन स्तर 36 प्रतिशत तक बढ जाने की अपेक्षा की जाती है। समुद्री जलजंतु पालन की उपयुक्त नीति तथा बीमा सुविधाओं का न होना इस प्रौद्योगिकी के बड़े पैमाने पर अपनाए जाने के मार्ग में आने वाली प्रमुख बाधाएं हैं।

लक्षित लाभार्थी और मुख्य लाभ

पिंजरे में मछली पालन की तकनीक समुद्रतट पर बसे राज्यों और संघ शासित प्रदेशों में मछुआरों, मछली पालक किसानों, सहकारिताओं, स्वयं सहायता समूहों तथा निजी उद्यमियों द्वारा सफलतापूर्वक अपनाई जा रही है। ऐसी अपेक्षा है कि वर्ष 2030 तक लगभग 3.6 लाख टन अधिक मूल्य वाली मछलियों (3 टन/6 मी. व्यास के पिंजरे) का वार्षिक उत्पादन होगा। पिंजरे में मछली पालन में प्रत्यक्ष और परोक्ष गतिविधियों के माध्यम से रोजगार सृजित करने की बहुत क्षमता है। इस दृष्टि से पिंजरे के रखरखाव, उनके निर्माण तथा अन्य क्षेत्रों से संबंधित रोजगार सृजित हो सकते हैं। अनुमान है कि वर्ष 2030 में इस तकनीक से 7.86 मिलियन मानव दिवस वार्षिक रोजगार सृजित होगा।

कम लागत की जस्ती पिंजरा

पिंजरा मछली पालन प्रणाली

आर्थिक लाभ

इस तकनीक के अपनाने से वर्तमान स्तर पर पिंजरे में मछली पालन से सृजित होने वाली सकल आय 600 करोड़ रुपये है तथा अनुमानतः वर्ष 2030 तक इस प्रौद्योगिकी से 14,400 करोड़ रुपये की सकल आय सृजित हो सकेगी। वर्ष 2005 से 2030 की अवधि के दौरान मछली पालन की इस तकनीक से अनुमानतः कुल 5,268 करोड़ रुपये का सकल आर्थिक सरप्लस सृजित होगा (वर्ष 2018 के मूल्यों पर)।

संरक्षण कृषि

प्रौद्योगिकी की रुपरेखा

संरक्षण कृषि का विकास गेहूँ उत्पादन में आने वाली बाधाओं से जुड़ा है। इन बाधाओं में विशेष रूप से पछेती बुवाई के कारण 1980 के दशक के दौरान गेहूँ की उत्पादकता में कमी आना, अक्षम उत्पादन विधियाँ तथा सिंधु–गंगा के मैदानों में चावल–गेहूँ फसल प्रणाली में संसाधनों का अत्यधिक दोहन जैसी बाधाएं शामिल हैं। शून्य जुताई (जेडटी) यंत्र के विकास से किसानों को वाणिज्यिक पैमाने पर जुताईहीन खेती की विधि अपनाने का अवसर प्राप्त हुआ है। एसीआईएआर, आईआरआरआई तथा राष्ट्रीय कृषि अनुसंधान संस्थानों के सहयोग एवं 'सिमिट' के माध्यम से इस प्रौद्योगिकी को बड़े पैमाने पर बढ़ावा दिया जा रहा है।

अपनाए जाने वाले क्षेत्र

भारत में सिंधु–गंगा के मैदानों में संरक्षण कृषि संबंधी विधियाँ चावल–गेहूँ फसल प्रणाली में बड़े पैमाने पर अपनाई जा रही हैं। इस क्षेत्र में पंजाब, हरियाणा, उत्तर प्रदेश, बिहार, पश्चिम बंगाल राज्य शामिल हैं। चावल–गेहूँ फसल प्रणाली में संरक्षण कृषि का प्रचार–प्रसार सिंधु–गंगा के उत्तर पश्चिमी मैदान (पंजाब, हरियाणा और पश्चिमी उत्तर प्रदेश) में, पूर्वी सिंधु–गंगा के मैदान (पूर्वी उत्तर प्रदेश, बिहार और पश्चिम बंगाल) की अपेक्षा अधिक हुआ है। पंजाब और हरियाणा में संरक्षण कृषि के अंतर्गत आने वाला क्षेत्रफल बढ़ा है। यह 2000–01 में 0.115 मिलियन हैक्टर था जोकि वर्ष 2018–19 में बढ़कर लगभग 0.8 मिलियन हैक्टर हो गया। वर्तमान में यह प्रौद्योगिकी हरियाणा और पंजाब के लगभग 13.5 प्रतिशत गेहूँ की खेती वाले क्षेत्रफल में अपनाई जा रही है तथा आने वाले वर्षों में इसके और अधिक विस्तार करने की संभावना है।

लक्षित लाभार्थी और मुख्य लाभ

संरक्षण कृषि को मुख्यतः सिंधु–गंगा के मैदानी भागों में चावल–गेहूँ फसल प्रणाली के अंतर्गत गेहूँ की फसल के लिए लक्षित किया गया है। इस प्रौद्योगिकी से किसानों को सिंधु–गंगा के मैदानी क्षेत्र में बासमती चावल की देर से पकने वाली किस्मों की कटाई के बाद गेहूँ की पछेती बुवाई की बाधाओं से निपटने में सहायता मिली है और इसके साथ ही इससे गुल्ली–डंडा खरपतवार या फेलेरिस माइनर के नियंत्रण में भी सफलता मिली है। परंपरागत जुताई की तुलना में इसकी लागत कम होने तथा उपज में होने वाले लाभ के कारण इस प्रौद्योगिकी को अनेक किसानों द्वारा अपनाया जा रहा है। शून्य जुताई प्रणाली से कार्बन प्रच्छादन को बढ़ाने में भी सहायता मिलती है (0.595 टन/है./वर्ष) तथा ग्रीन हाउस गैसों का उत्सर्जन भी कम होता है। इस प्रौद्योगिकी का एक महत्वपूर्ण लाभ परंपरागत जुताई प्रणाली की तुलना में जल के कम उपयोग के कारण सिंचाई जल की उत्पादकता में वृद्धि (0.46 कि.ग्रा. गेहूँ प्रति घन मी. जल) भी है।

आर्थिक एवं पर्यावरणीय लाभ

हरियाणा और पंजाब की चावल–गेहूँ फसल प्रणाली पर किए गए प्रकाशित अध्ययनों के आंकड़ा विश्लेषण के आधार पर यह पाया गया है कि परंपरागत जुताई प्रणाली की तुलना में गेहूँ की खेती में संरक्षण कृषि के अपनाने से 4.6 प्रतिशत उपज लाभ हुआ तथा लागत में 10.6 प्रतिशत की कमी आई है। गेहूँ में संरक्षण कृषि के अपनाने के कारण अनुमानतः कुल 10,193 करोड़ रुपये का सरप्लस सृजित हुआ है (वर्ष 2000–01 से 2018–19 तक)। इसी अवधि के दौरान जल उत्पादकता और इसके साथ ही कार्बन के उत्पादन के कारण होने वाला आर्थिक लाभ अनुमानतः क्रमशः लगभग 882 करोड़ रुपये तथा 9,759 करोड़ रुपये रहा है। वर्ष 2000–2001 से 2018–19 की अवधि के दौरान गेहूँ में संरक्षण कृषि के अपनाने से कुल 20,833 करोड़ रुपये का आर्थिक लाभ हुआ है (अर्थात् 1,096 करोड़ रुपये प्रति वर्ष)। गेहूँ में संरक्षण कृषि प्रौद्योगिकी को अपनाने के कारण त्रैवार्षिकी 2018–19 के दौरान भारत के उत्तर पश्चिमी सिंधु–गंगा के मैदानों में होने वाला अनुमानित आर्थिक लाभ लगभग 2,765.79 करोड़ रुपये है।

हैप्पी सीडर : फसल अपशिष्ट का स्वस्थाने प्रबंध

प्रौद्योगिकी की रुपरेखा

फसल अपशिष्ट या पराली जलाने की समस्या हाल के वर्षों में बहुत गंभीर हो गई है जिसका कारण चावल की फसल की कटाई के बाद ठूंठों को जमीन में सीधे गाड़ने/दबाने की कोई उपयुक्त यांत्रिकी का मौजूद न होना है। अब चावल के खेतों में पराली जलाने की समस्या को हल करने के लिए एक नया यंत्र आ गया है जो हैप्पी सीडर (एचएस) या टर्बो हैप्पी सीडर (टीएचएस) कहलाता है। भा.कृ.अनु.प.–केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान ने वर्ष 2009–10 के दौरान फसल अपशिष्ट के स्वस्थाने/यथास्थान प्रबंधन के लिए प्रयोग स्थलों पर इस यंत्र का उपयोग किया था। एक अनुमान के अनुसार पंजाब, हरियाणा तथा पश्चिमी उत्तर प्रदेश में प्रति वर्ष लगभग 23 मिलियन टन फसल अपशिष्ट या पराली जलाई जाती है और इसका धुंआ पूरे उत्तर भारत में वायु प्रदूषण का एक प्रमुख स्रोत बन गया है। इसका विषैला धुंआ क्षेत्र के अनेक लोगों में श्वसन संबंधी समस्याओं का कारण बनता है।

हैप्पी सीडर इस समस्या का एक आदर्श हल है क्योंकि इसके द्वारा बीज की बुवाई के साथ पिछली फसल के अवशेष को हटाकर उसे पूरे खेत में समान रूप से बिखेर दिया जाता है। इस प्रकार, खेत को पलवार मिल जाती है जिससे उसमें नमी बनी रहती है तथा बीज अंकुरण को भी बढ़ावा मिलता है। समय के साथ यह भूसा प्राकृतिक रूप से विघटित होकर सड़ जाता है और मृदा भी पोषक तत्वों से समृद्ध हो जाती है। अध्ययनों में हैप्पी सीडर से होने वाले लाभों का सत्यापन किया गया है और पाया गया है कि इससे मृदा में फसल अपशिष्ट अच्छी तरह मिल जाते हैं तथा निवेश की लागत में बचत होती है। आरंभ में वर्ष 2016 तक पंजाब में हैप्पी सीडर को किसानों ने अच्छी तरह से नहीं अपनाया था क्योंकि उस समय राज्य के 64,000 हैक्टर क्षेत्रफल के लिए केवल 620 मशीनें कार्य कर रही थीं। पंजाब में 35 लाख हैक्टर (लगभग 86 लाख एकड़) क्षेत्रफल में गेहूँ की फसल उगाई जाती है। वर्तमान में पंजाब में, लगभग 12,000 हैप्पी सीडर हैं और जिन क्षेत्रों में इनका उपयोग किया जा रहा है वहाँ गेहूँ की उपज 24 क्विंटल/एकड़ तक हो गई है। जिन किसानों ने हैप्पी सीडर का उपयोग किया है उन्होंने इस यंत्र के बारे में बहुत सकारात्मक प्रतिक्रिया (फीडबैक) व्यक्त की है। वर्ष 2018–19 के दौरान पंजाब में लगभग 5 लाख हैक्टर (12.35 लाख एकड़) क्षेत्रफल में गेहूँ की बुवाई हैप्पी सीडर का उपयोग करके की गई।

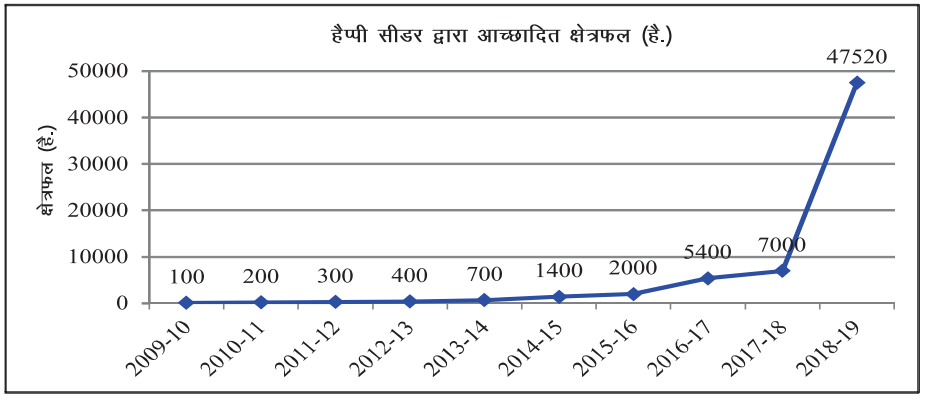

अपनाए जाने वाले क्षेत्र

हैप्पी सीडर के साथ स्वस्थाने पराली या फसल अपशिष्ट का प्रबंधन हरियाणा के चावल–गेहूँ की खेती वाले क्षेत्र में किया गया है। जिस क्षेत्र में इसे अपनाया गया है वहाँ उपज में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है। वर्ष 2009–10 में इसे हरियाणा में 100 हैक्टर क्षेत्रफल में अपनाया गया था, जबकि वर्ष 2018–19 में इसे 47,250 हैक्टर क्षेत्रफल में उपयोग में लाया गया।

लक्षित लाभार्थी और मुख्य लाभ

हैप्पी सीडर का उपयोग करके गेहूँ की सीधी बिजाई वाली प्रौद्योगिकी का उपयोग करके परंपरागत जुताई यंत्रों की तुलना में गेहूँ की उपज में 2–5 क्विंटल/है. (5–10 प्रतिशत) वृद्धि हुई है। इसके परिणामस्वरूप खेती की लागत में भी 4000–5000 रु./है. की बचत हुई है। यह बचत मुख्यतः जुताई की लागत में कमी आने (60–70 प्रतिशत), खरपतवार प्रबंध की लागत कम होने (20–25 प्रतिशत) और सिंचाई की लागत में कमी होने (15–20 प्रतिशत) के कारण हुई है। हैप्पी सीडर की सहायता से गेहूँ की बुवाई करने से सिंचाई जल की भी 700 मी.^{3}/है. बचत हुई है (15–20 प्रतिशत)। इस तकनीक से होने वाले कार्बन प्रच्छादन की मात्रा 1 टन/है./वर्ष है।

आर्थिक लाभ

हरियाणा में हैप्पी सीडर के उपयोग से वर्ष 2009–10 से 2018–19 की अवधि के दौरान 59.2 करोड़ रुपये का अतिरिक्त आर्थिक सरप्लस सृजित हुआ (वर्ष 2018 के मूल्यों पर)। आर्थिक लाभों का हिस्सा अतिरिक्त उपज के रूप में 51 प्रतिशत तथा खेती की लागत की बचत में 49 प्रतिशत रहा। वर्ष 2009–10 से 2018–19 की अवधि के दौरान हैप्पी सीडर की विनिर्माता कंपनियों को लगभग 48.8 करोड़ रुपये का राजस्व प्राप्त हुआ। इसी अवधि के दौरान हैप्पी सीडर के कारण लगभग 40,000 मानव दिवस रोजगार सृजित हुआ। वर्ष 2018 की तुलना में वर्ष 2019 के दौरान हरियाणा में पराली जलाने की घटनाओं में कमी आई है। वर्ष 2018 में जहाँ इस प्रकार की घटनाओं की संख्या 8750 थी, वहीं 2019 में घटकर 6296 रह गई (29 प्रतिशत कमी)।

भा.कृ.अनु.प. – रबड़ के लचीले चैक बांध

प्रौद्योगिकी की रुपरेखा

भा.कृ.अनु.प.–लचीले चैक बांध, रबड के बांध के रूप में जाने जाते हैं। जलसंभर क्षेत्र में अपनाई जाने वाली इन संरचनाओं को धारा के आर–पार जल संभरों में मिट्टी और पानी के संरक्षण के लिए उपयोग में लाया जाता है। लंबी सूखी अवधि/कम वर्षा वाले मौसमों के दौरान इसकी शीर्ष भित्ति को आसानी से फुलाकर इसके लचीलेपन के कारण अतिरिक्त पानी भंडारित किया जा सकता है। चक्रवात जैसी गंभीर घटनाओं के दौरान तथा भारी वर्षा और बाढ़ की दशा में इस संरचन को पिचका दिया जाता है, ताकि पूरी संरचना को कोई क्षति न पहुँचे तथा नदी/नाले के किनारों की मिटटी का कटाव नहीं हो और नाले या बहाव की तली में भी अपरदन न हो।

अपनाए जाने वाले क्षेत्र

भा.कृ.अनु.प.–रबड़ के लचीले चैक बांध की प्रौद्योगिकी वर्ष 2010 में ओडिशा के खुर्दा जिले में आरंभ की गई थी। वर्तमान में इस प्रकार के रबड़ के बांध भारत के आठ राज्यों नामतः ओडिशा (13), महाराष्ट्र (6), गुजरात (4), उत्तराखण्ड (4), हिमाचल प्रदेश (2), पश्चिम बंगाल (2), मेघालय (1) और तमिल नाडु (1) के लगभग 33 जगहों पर स्थापित किए गए हैं। इसके अलावा इन्हें कुछ अन्य स्थानों पर भी स्थापित किए जाने का कार्य चल रहा है।

लक्षित लाभार्थी और मुख्य लाभ

रबड़ के लचीले चैक बांध भारत के बारानी पारिस्थितिक प्रणाली वाले किसानों के लिए उपयोगी हैं तथा इनके कारण जलसंभरों में मिट्टी और पानी के कारगर संरक्षण की बहुत संभावना उत्पन्न हुई है। इस प्रौद्योगिकी से 1.5 मी. की ऊंचाई और 0.1 प्रतिशत नाली ढलान पर किसी भी समय 5 मी. चौड़े रबड़ के बांध से 9000 मी.^{3} जल भंडारण की अतिरिक्त क्षमता सृजित की जा सकती है। पूरे फसल मौसम के दौरान लगभग 52,000 मी.^{3} से 80,000 मी.^{3} जल भंडारित किया जा सकता है। भारत के विभिन्न कृषि पारिस्थितिक क्षेत्रों में स्थापित किए गए रबड़ के इन बांधों के परिणामस्वरूप खरीफ के दौरान 400 हैक्टर सिंचाई कमान क्षेत्र, रबी के दौरान 130 हैक्टर व ग्रीष्म ऋतु के दौरान 60 हैक्टर सिंचाई कमान क्षेत्र में वृद्धि हुई है। इसके अतिरिक्त इस प्रौद्योगिकी में भूजल के पुनर्भरण में योगदान देने की भी बहुत क्षमता है।

चंदेश्वर, ओडिशा में स्थापित रबड़ का बांध

आर्थिक लाभ

भा.कृ.अनु.प.–रबड़ के लचीले चैक बांधों को अपनाने कारण खरीफ मौसम वाली फसलों की उत्पादकता में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है। चावल (12–62 प्रतिशत), दलहनों (24–46 प्रतिशत) और सब्जियों (17–36 प्रतिशत) के उत्पादन में पर्याप्त वृद्धि देखी गई। इस प्रकार, रबड़ के बांध के कमान वाले क्षेत्र में 13,500 से 32,000 रु./है. का अतिरिक्त निवल लाभ हुआ। इस प्रणाली से होने वाला लाभ–लागत अनुपात 2.3:1 था। रबड़ के बांध वाले कमान क्षेत्र में इस प्रकार 1.34 करोड़ रुपये का अतिरिक्त आर्थिक लाभ आकलित किया गया। चंदेश्वर (ओडिशा) में रबड़ के बांध वाले कमान क्षेत्र में इनके स्थापित किए जाने के बाद की प्रावस्था (स्थिति) में किसानों के पलायन की दर (शहरी क्षेत्रों की ओर) में भी 28.5 प्रतिशत की कमी आई।

मृदा परीक्षक

प्रौद्योगिकी की रुपरेखा

भा.कृ.अनु.प.–भारतीय मृदा विज्ञान संस्थान, भोपाल द्वारा मैसर्स नागार्जुन एग्रो कैमिकल्स प्राइवेट लिमिटेड, हैदराबाद के सहयोग से मृदा के स्वास्थ्य का पता लगाने के लिए एक त्वरित, वहनीय, वैज्ञानिक तथा आर्थिक प्रणाली की आवश्यकता की पूर्ति के लिए 'मृदा परीक्षक' नामक मिट्टी की जाँच करने की एक किट विकसित की गई है। यह एक डिजिटल चलशील मात्रात्मक मापन करने वाली मिनी लैब/मृदा परीक्षण किट है जिससे किसानों के खेतों में ही मृदा परीक्षण की सेवा उपलब्ध कराई जाती है। इस मृदा परीक्षण किट के माध्यम से मृदा के सभी प्राचल जैसे मृदा का pH, ईसी, कार्बनिक कार्बन, उपलब्ध नाइट्रोजन, फास्फोरस, पोटेशियम, सल्फर तथा जस्ता, बोरान और लौह जैसे सूक्ष्म तत्व की मात्रा ज्ञात की जा सकती है। इस मृदा परीक्षण किट का उपयोग करके मृदा स्वास्थ्य कार्ड तैयार किए जा रहे हैं। मृदा परीक्षक का पहला संस्करण 2015 में उपयोग में लाया गया था। बाद में, इस प्रौद्योगिकी का उन्नयन किया गया तथा मृदा स्वास्थ्य कार्ड तैयार करने के लिए इसमें मृदा स्वास्थ्य कार्ड योजना (एसएचसी) के लिए वांछित सभी अनिवार्य प्राचलों को शामिल किया गया। उल्लेखनीय है कि मृदा स्वास्थ्य कार्ड योजना भारत सरकार द्वारा प्रायोजित की जा रही है।

अपनाए जाने वाले क्षेत्र

31 मार्च 2019 तक लगभग 11,200 मृदा परीक्षक और 43,000 रिफिल भारतीय बाजारों में बेचे गए। इस तकनीक का उपयोग करके अब तक कुल 5.4 मिलियन मृदा नमूनों का विश्लेषण किया जा चुका है। मृदा स्वास्थ्य कार्ड योजना के अंतर्गत मृदा परीक्षक का उपयोग करके अनुमानतः 20 प्रतिशत (कुल संख्या 27 मिलियन) मृदा स्वास्थ्य कार्ड वितरित किये गये हैं। यह मिनी लैब प्रौद्योगिकी सभी कृषि विज्ञान केन्द्रों, कृषि प्रयोगशालाओं (राज्य विभागों), स्वयं सेवी संगठनों, सार्वजनिक क्षेत्र के संगठनों तथा अन्य एजेंसियों द्वारा खरीदी गई हैं।

लक्षित लाभार्थी और मुख्य लाभ

यह प्रौद्योगिकी किसानों, वैज्ञानिकों, विभिन्न सरकारों में कार्यरत तकनीकीविदों तथा निजी मृदा परीक्षण प्रयोगशालाओं के लिए उपयोगी है। मृदा परीक्षक से एक ही स्थान पर आसानी से मिट्टी की स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं का आसान हल प्राप्त हो जाता है। यह उपकरण

मृदा परीक्षक मिनी लैब प्रौद्योगिकी

हल्के भार का है और इसकी साज–संभाल भी आसान है। इसके उपयोग से वांछित प्राचलों का विश्लेषण करने में लगने वाली बिजली की लागत कम हो जाती है और मिट्टी परीक्षण के परिणाम भी बहुत जल्दी किसानों तक पहुँचाए जा सकते हैं।

आर्थिक लाभ

मृदा परीक्षक मिनी प्रयोगशाला के द्वारा देश में लगभग 20 प्रतिशत मृदा स्वास्थ्य कार्ड तैयार किए गए हैं। मृदा स्वास्थ्य कार्ड योजना का उर्वरकों की लागत कम करने (8–10 प्रतिशत) और देश में उत्पादन को बढ़ाने (5–6 प्रतिशत) पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ा है। मृदा परीक्षक मिनी प्रयोगशाला से भा.कृ.अनु.प.–भारतीय मृदा विज्ञान संस्थान (भोपाल) को रॉयल्टी के रूप में लगभग 30 मिलियन रुपये प्राप्त हुए हैं।

धान की सीधी बिजाई वाला उन्नत बुवाई यंत्र (ड्रम सीडर)

प्रौद्योगिकी की रुपरेखा

मनुष्यों द्वारा रोपाई किए जाने के स्थान पर सीधी बिजाई के द्वारा धान की रोपाई विधि को पहले की तुलना में अधिक अपनाया जा रहा है जिसका प्रमुख कारण मजदूरों की कमी तथा समय पर सिंचाई जल का उपलब्ध नहीं होना है। इन समस्याओं के कारण धान की खेती की लागत बहुत बढ़ जाती है। चावल की सीधी बिजाई (डीएसआर) प्रणाली में गीली मिट्टी वाली सतह पर पहले से अंकुरित बीजों की बिजाई की जाती है। इसके लिए उन्नत धान की सीधी बिजाई का यंत्र जिसे सामान्य रूप से ड्रम सीडर के नाम से जाना जाता है, उपयोग में लाया जाता है जिससे पूर्व अंकुरित बीज का समान रूप से वितरण होता है। इस प्रकार, खेत में पौधों की संख्या समरूप रहती है तथा बीज की मात्रा में काफी बचत होती है। मैसर्स मैसूर इंजीनियरिंग कंपनी के सहयोग से केन्द्रीय कृषि अभियांत्रिकी संस्थान के क्षेत्रीय केन्द्र द्वारा ड्रम सीडर को सुधारकर उपयोग में लाए जाने के लिए जारी किया गया। इस प्रक्रिया में इस यंत्र के अंतरराष्ट्रीय चावल अनुसंधान संस्थान, फिलीपाइंस द्वारा विकसित मॉडल और 1980 के दशक में विकसित अन्य मॉडलों को पुनः डिज़ाइन किया गया। पूर्व के ये मॉडल अधिक भारी थे और इनका उपयोग करने पर अनुशंसित मात्रा से अधिक बीजों की आवश्यकता पड़ती थी। खेत मजदूरों (विशेषकर खेतिहर महिलाओं) की कमी/समस्या को ध्यान में रखते हुए कृषि में बल विज्ञान तथा सुरक्षा पर अखिल भारतीय समन्वित अनुसंधान परियोजना के कोयम्बत्तूर स्थित केन्द्र द्वारा हल्के भार व कम सामग्री वाले मानव चालित 4–कतार के धान की सीधी बिजाई वाले यंत्र का डिज़ाइन पुनः तैयार किया गया। इसके उपयोग के लिए यह आवश्यक है कि खेत की गीली भूमि अच्छी तरह समतल हो तथा बीज की बुवाई के पूर्व खेत से पानी निकाल दिया जाए। बिजाई के 3 दिन बाद पहली सिंचाई की जाए तथा कोनो–वीडर का उपयोग करके 15 दिन बाद खेतों से खरपतवार की निकासी कर दी जाए।

अपनाए जाने वाले क्षेत्र

इस यंत्र को प्रक्षेत्र स्तर पर सबसे पहले 2009–10 में 1,200 यंत्रों का उपयोग करते हुए अपनाया गया। वर्तमान में, उन्नत धान की सीधी बिजाई यंत्र की 65,000 से अधिक इकाइयाँ किसानों के खेतों में उपयोग में लाई जा रही हैं और इनका उपयोग मुख्यतः तमिल नाडु, केरल, असम और पुदुचेरी राज्यों में हो रहा है। इसके अलावा अब इस यंत्र को आंध्र प्रदेश, तेलंगाना, ओडिशा, पश्चिम बंगाल तथा देश के उत्तरी–पूर्वी राज्यों में भी उपयोग में लाया जाना शुरू हो गया है। इससे भारत में धान की खेती वाले क्षेत्रों में यह प्रौद्योगिकी कितनी तेजी से अपनाई जा रही है, इसका पता चलता है। ड्रम सीडर के सफल वाणिज्यीकरण के परिणामस्वरूप इस प्रौद्योगिकी का प्रचार–प्रसार न केवल भारत में, बल्कि कुछ अफ्रीकी देशों में भी हुआ है। अध्ययनों से यह पता चला है कि इस प्रौद्योगिकी का उपयोग करके मानव द्वारा रोपाई किए जाने की तुलना में 5–10 प्रतिशत अधिक उपज मिलती है। इस यंत्र की क्षमता 1.40 हैक्टर/दिन है।

आर्थिक लाभ

किसान के खेत में ड्रम सीडर का उपयोग

धान की बिजाई का यह उन्नत यंत्र सीधी बिजाई के लिए धान की पौध रोपाई विधि का एक अच्छा विकल्प बनकर उभर रहा है। इस यंत्र को अपनाने से फसल की अवधि में 25–30 दिनों की बचत होती है व 3–4 सिंचाइयाँ कम लगती हैं। इस विधि में परिश्रम कम लगता है। इस प्रकार, कुल मिलाकर पौधशाला में पौध उगाकर रोपाई करने की तुलना में इस यंत्र के उपयोग से धान की रोपाई करने में लागत में काफी बचत होती है। धान की खेती की इस विधि से खेत में काम करने वाले मजदूरों की स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं को हल करने में भी सहायता मिलती है। चार कतार वाले धान के सीधे बिजाई यंत्र (महिलाओं के लिए विशेष रूप से अनुकूल) की लागत 3,600रु./इकाई है, जबकि आठ कतार वाले यंत्र की लागत 4,800 रु./इकाई है। ड्रम सीडर का उपयोग करके परिचालन लागत 400 रु./है. आती है, जबकि इसकी तुलना में मानवीय विधि से रोपाई करने में परिचालन लागत 6,250 रु./है. आती है। इस प्रकार, इस विधि से मानवीय ढंग से रोपाई करने की विधि की तुलना में 5,850 रु./है. की बचत होती है। त्रैवार्षिकी 2018–19 के दौरान इस विधि का उपयोग करके अनुमानतः 3,020 करोड़ रुपये आर्थिक सरप्लस प्राप्त हुआ है। वर्ष 2009–10 से 2018–19 की अवधि के दौरान इस प्रौद्योगिकी के अपनाने से लगभग 16,472 करोड़ रुपये का कुल आर्थिक राजस्व प्राप्त हुआ। ड्रम सीडर के उपयोग से प्रति वर्ष 1.01 मिलियन मानव दिवसों का रोजगार सृजित हो रहा है। यह रोजगार धान की बिजाई में लगे मजदूरों/परिचालकों के अलावा इस यंत्र के उत्पादन/विनिर्माण में लगे कर्मियों के रूप में सृजित होता है।

मानव चलित कोनो – निराई–गुड़ाई यंत्र

प्रौद्योगिकी की रुपरेखा

खरपतवार, खेत में पोषक तत्वों तथा जल का उपयोग करने वाले पौधों के सर्वाधिक हानिकारक पीड़क हैं तथा ये विनाशकारी कीटों को भी शरण प्रदान करते हैं। खरपतवार प्रबंध फसलोत्पादन प्रक्रिया का एक महत्वपूर्ण अंग है जो न केवल महँगा, बल्कि कठिन भी है। फसल मौसम के दौरान मजदूरों की बढ़ती हुई कमी के कारण खरपतवार नियंत्रण का एकमात्र व्यावहारिक विकल्प यांत्रिक विधि से खरपतवार निकालना है क्योंकि इससे खरपतवार नियंत्रण के लिए उपयोग में लाए जाने वाले खरपतवार नाशियों की कम मात्रा लगती है और इस प्रकार यह पर्यावरण की दृष्टि से भी सुरक्षित है। भा.कृ.अनु.प.–केन्द्रीय कृषि अभियांत्रिकी संस्थान (सीआईएई)–क्षेत्रीय केन्द्र द्वारा वर्ष 1980 में अंतरराष्ट्रीय चावल अनुसंधान संस्थान (आईआरआरआई) मॉडल एक कतार व दोहरे कतार वाला मानव चालित कोनो निराई–गुड़ाई यंत्र विकसित किया गया। इसके पूर्व के जो मॉडल उपलब्ध था उसका उपयोग तभी हो सकता था जब धान की रोपाई वाले खेत की भूमि गीली हो। इसलिए पूर्व में इसकी माँग सीमित थी। इसके अलावा आईआरआरआई द्वारा डिज़ाइन किया गया कोनो–निराई गुड़ाई यंत्र भारी था तथा इसे चलाने व निराई–गुड़ाई आदि संबंधी कार्य हेतु शंकु बनाने के लिए धातु की चादर इस्तेमाल होती थी जो एक जटिल प्रक्रिया थी। केन्द्रीय कृषि अभियांत्रिकी संस्थान के क्षेत्रीय केन्द्र ने प्लास्टिक का मुलम्मा चढ़ाकर शंकु बनाने की विनिर्माण प्रक्रिया को सरल किया और इस प्रकार यंत्र का कुल भार कम कर दिया। इस उन्नत डिज़ाइन से विनिर्माताओं को इस यंत्र का उत्पादन कई गुना बढ़ाने में सहायता मिली। वर्तमान में अनेक विनिर्माता हजारों की संख्या में मानव चालित कोनो–निराई गुड़ाई यंत्र विनिर्मित कर रहे हैं तथा इनका उपयोग देश के धान की खेती वाले राज्यों में व्यापक रूप से किया जा रहा है। इस उपकरण का उपयोग 20 सें.मी. के न्यूनतम कतार वाले पंक्ति में बोए गए/सीधी बीजाई वाले धान के गीली भूमि वाले खेतों में किया जा रहा है तथा यह चावल गहनीकरण प्रणाली (एसआरआई) विधि का उपयोग किए जाने वाले धान के खेतों के लिए भी उपयुक्त है।

अपनाए जाने वाले क्षेत्र

चावल गहनीकरण प्रणाली (एसआरआई) तथा यांत्रिक रोपाई/बिजाई को बढ़ावा देने के साथ कोनो–निराई गुड़ाई यंत्र की माँग ज्यामितीय अनुपात में बढ़ी है। इस प्रौद्योगिकी के तेजी से प्रचार–प्रसार व इसे अपनाए जाने के कारण यह सर्वाधिक सफल सिद्ध हो रही है। इस यंत्र का उपयोग मुख्यतः तमिल नाडु, केरल, असम और पुदूचेरी राज्यों में हो रहा है और अब तक इसे लगभग 1.25 मिलियन हैक्टर क्षेत्रफल में अपनाया जा चुका है। उपरोक्त राज्यों के अलावा इस यंत्र को आंध्र प्रदेश, तेलंगाना, ओडिशा, पश्चिम बंगाल तथा भारत के उत्तर पूर्वी राज्यों में भी उपयोग में लाया जा रहा है। वर्तमान में धान के खेतों में खरपतवारों का प्रबंध करने के लिए कोनो–निराई गुड़ाई यंत्र की 2.5 लाख से अधिक इकाइयाँ उपयोग में लाई जा रही हैं। इस उन्नत कोनो निराई–गुड़ाई यंत्र की खेत क्षमता लगभग 0.15 लाख हैक्टर/दिन है। उपकरण की लागत 1,900 रु./इकाई है।

किसान के खेत में कोनो – निराई गुड़ाई यंत्र का उपयोग

आर्थिक लाभ

कम लागत वाली यह प्रौद्योगिकी बहुत लोकप्रिय होती जा रही है। इसे इस्तेमाल करना आसान है, कम श्रम साध्य है और इससे फसल को वातायन की अच्छी सुविधा प्राप्त होती है। पौधों की जड़ प्रणाली के विकास को बढ़ावा मिलता है तथा मिट्टी में नमी का संरक्षण होता है। कोनो निराई–गुड़ाई यंत्र की परिचालन लागत 1,890 रु./है. है जबकि परंपरागत विधि (मानवों द्वारा निराई–गुड़ाई की विधि) की लागत 4,170रु./है. है। इस प्रकार, इस यंत्र से परिचालन लागत में 2,280 रु./है. की बचत होती है। त्रैवार्षिकी 2018–19 के दौरान कोनो–निराई गुड़ाई यंत्र का उपयोग करने के कारण अनुमानतः 2,617 करोड़ रुपये का आर्थिक सरप्लस अर्जित हुआ। वर्ष 2009–2010 से 2018–19 की अवधि के दौरान इस प्रौद्योगिकी को अपनाने से अनुमानतः लगभग 13,685 करोड़ रुपये का आर्थिक लाभ हुआ। कोनो–निराई–गुड़ाई यंत्र के विकास व इसके प्रचार–प्रसार के कारण निराई–गुड़ाई का काम करने वाले श्रमिकों/परिचालकों और इसके साथ–साथ उपकरण के उत्पादन/विनिर्माण तथा इसकी साज–संभाल करने वाले कर्मियों के रूप में प्रति वर्ष 8.98 मिलियन मानव दिवस रोजगार सृजित हुआ।

झुकी प्लेट वाला रोपाई यंत्र/बीटी कपास बुवाई यंत्र

प्रौद्योगिकी की रुपरेखा

गेहूँ, मक्का, कपास, सरसों, सोयाबीन आदि जैसी खेत फसलों को वांछित अंतराल वाली कतारों में बोने की आवश्यकता होती है, ताकि फसल बेहतर स्थापित हो सके और उसकी उचित वृद्धि हो। मानव चालित या पशु चालित और शक्ति स्रोतों से चलाई जाने वाली बीज ड्रिल प्रौद्योगिकी से बीज की दर समरूप रखी जा सकती है लेकिन पौधे से पौधे और कतार की दूरी अलग–अलग रहती है। ऐसा बीटी कपास जैसी फसलों के उच्च गुणवत्ता वाले बीजों के लिए और भी अधिक महत्वपूर्ण है क्योंकि ये बीज महँगे होते हैं। एक–एक बीज उठाने के लिए डिज़ाइन किए गए इस झुकी हुई प्लेट वाले रोपाई यंत्र से बीज से बीज के बीच निश्चित अंतराल बना रहता है। एक–एक बीज की अलग–अलग बुवाई होने से बीज की दर तथा पौधों के बीच का अंतराल उचित बना रहता है। यह यंत्र भा.कृ.अनु.प.–केन्द्रीय कृषि अभियांत्रिकी संस्थान द्वारा वर्ष 2002–03 में डिज़ाइन करके विकसित किया गया था। इसे ट्रैक्टर से चलाते हुए (35 अश्व शक्ति के) छह कतारों में रोपाई की जा सकती है। इस प्रकार यह यंत्र मूँगफली, चना, सोयाबीन, सरसों आदि फसलों की बुवाई के लिए भी उपयुक्त है। तथापि, यह यंत्र हरियाणा तथा इसके आस–पास के राज्यों में तब बीटी कपास की रोपाई के लिए अधिक लोकप्रिय हो गया जब इसमें फार्म उपकरण तथा यंत्र पर अखिल भारतीय समन्वित अनुसंधान परियोजना के अंतर्गत आने वाले राज्यों में अपनाया गया तथा वहाँ इसे बहुत व्यावहारिक पाया गया। यह झुकी हुई प्लेट वाला रोपाई यंत्र अब हरियाणा, पंजाब तथा इसके आस–पास के क्षेत्रों में बीटी कपास बुवाई यंत्र के रूप में लोकप्रिय हो गया है।

अपनाए जाने वाले क्षेत्र

यह यंत्र स्थानीय विनिर्माताओं तथा कृषि यंत्रों को किराया पर देने वाले केन्द्रों के सहयोग से वाणिज्यीकृत किया गया तथा हरियाणा और पंजाब में कपास की रोपाई के लिए इसने छोटे और सीमांत किसानों को सेवाएं प्रदान करने में मुख्य भूमिका निभाई है। झुकी हुई प्लेट वाले इस रोपाई यंत्र से सैल प्लेट का उपयुक्त आकार रखकर, बीज हॉपर की ऊँचाई को समायोजित करके तथा कूंड़ बनाने वाले उपकरण की उचित व्यवस्था करके बीटी कपास के बीजों को इस फसल के लिए सटीक बनाया गया है। वर्तमान में हरियाणा राज्य में बीटी कपास रोपाई यंत्र की 18,000 से अधिक इकाइयाँ उपयोग में लाई जा रही हैं।

आर्थिक लाभ

बीटी कपास के बीजों की बिजाई कपास की बुवाई के लिए इस्तेमाल होने वाले परंपरागत बीज रोपाई यंत्रों से की जाती थी। तथापि, इन बीज रोपाई यंत्रों का निष्पादन बहुत अधिक प्रभावी नहीं था क्योंकि इनका उपयोग करने पर बीज की अनुशंसित मात्रा (1.5 कि.ग्रा./है.) की तुलना में अधिक मात्रा में (3.5 कि.ग्रा./है) बीज की आवश्यकता पड़ती थी। कपास की रोपाई के लिए बीटी कपास के उन्नत रोपाई यंत्र की लागत 660 रु./है. आती है, जबकि परंपरागत बीज रोपाई यंत्र से रोपाई करने पर आने वाली लागत 1,190 रु./है. थी। इस प्रकार, इस तकनीक से परिचालन लागत में 530 रु./है. की बचत होती है। इसके अलावा 2 कि.ग्रा./है. बीज की बचत होती है (लागत 4,400 रुपये)। परंपरागत बीज रोपाई यंत्र के माध्यम से रोपाई करने पर घने पौधों की छंटाई करने पर 12 मजदूर लगाने पड़ते थे। इन पर लगने वाली लागत (2,400 रुपये) की भी बचत होती है। इस प्रौद्योगिकी से सृजित होने वाला वार्षिक आर्थिक सरप्लस 1,157 करोड़ रुपये (वर्ष 2018 के मूल्यों पर) है। बीटी कपास रोपाई यंत्र के अपनाने से वर्ष 2009–10 से 2018–19 की अवधि के दौरान सृजित होने वाला कुल आर्थिक सरप्लस अनुमानतः 7,180 करोड़ रुपये है।

किसान के खेत में झुकी हुई प्लेट वाले रोपाई यंत्र का उपयोग

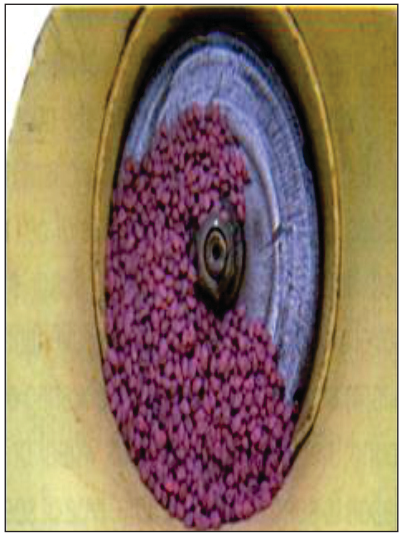

झुकी हुई प्लेट वाले रोपाई यंत्र द्वारा कपास की रोपाई

प्रौद्योगिकी के प्रभाव का मापन

उन्नत प्रौद्योगिकियाँ खाद्य एवं पौषणिक सुरक्षा का लक्ष्य प्राप्त करने में सक्षम हैं तथा इनसे निर्धनता कम की जा सकती है और निर्धन लोगों को कम मूल्य पर भोजन उपलब्ध कराया जा सकता है; जल, मृदा और वनस्पतियों जैसे प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण होता है और सकल जीवन स्तर में सुधार आता है। फसलों, बागवानी, पशुधन, मात्स्यिकी, कृषि यंत्रों व प्राकृतिक संसाधन प्रबंध से संबंधित अनेक कृषि प्रौद्योगिकियों (भा.कृ.अनु.प. द्वारा विकसित की गई) को उनके प्रभाव का मूल्याँकन करने के लिए चुना गया।

प्रौद्योगिकी के प्रभाव मूल्याँकन पर किए जाने वाले अध्ययनों में सामान्यतः विश्लेषणात्मक तकनीकों जैसे आंशिक बजटीकरण, समाश्रयण विश्लेषण, घटक उत्पादकता तथा आर्थिक सरप्लस विधि का उपयोग किया जाता है। विधि का चयन उस संदर्भ पर निर्भर करता है जिस पर प्रभाव अध्ययन किया जाना है अर्थात यह अध्ययन एक या अनेक जिंसों पर किया जा सकता है, आंकड़ों की उपलब्धता की स्थिति क्या है, आदि। सामान्यतः एकल जिंस के मामले में आर्थिक सरप्लस की विधि राष्ट्रीय स्तर पर प्रभाव के मूल्याँकन के लिए अधिक उचित मानी गई है। इस अभ्यास में भा.कृ.अनु.प. प्रणाली में विकसित प्रौद्योगिकियों के अपनाने के कारण पड़ने वाले आर्थिक प्रभाव के मूल्याँकन के लिए आर्थिक सरप्लस मॉडल का उपयोग किया गया है।

आर्थिक सरप्लस विधि

आर्थिक सरप्लस विधि में कुल आर्थिक सरप्लस (सामाजिक कल्याण) में होने वाले उन परिवर्तनों को मापा जाता है जिन्हें उपभोक्ताओं में होने वाले परिवर्तन और अर्थव्यवस्था में उत्पादक के परिवर्तन के योग के रूप में परिभाषित किया गया है। उपभोक्ताओं का सरप्लस उपभोक्ताओं द्वारा प्राप्त किया गया वह लाभ है जब वे ऐसे मूल्य पर कोई उत्पादन खरीदने में सक्षम होते हैं जो उस मूल्य से कम होता है, जो वे अदा कर सकते हैं, जबकि उत्पादक सरप्लस उत्पादक द्वारा प्राप्त किया गया वह लाभ है जब वे उस बाजार मूल्य पर अपनी जिंस को बेचते हैं जो उस मूल्य से अधिक होता है जिस पर वे किसी समय अपने उत्पाद को बेचना चाहते हैं। अनुसंधान के माध्यम से लाए गए तकनीकी परिवर्तन से उपज/अथवा लागत में कमी या दोनों के माध्यम से आपूर्ति वक्र में परिवर्तन आता है जिसके परिणामस्वरूप बाद में अर्थव्यवस्था को लाभ प्राप्त होता है।

इस अध्ययन में समानांतर बदलावों के साथ रैखिक आपूर्ति तथा मांग वक्रों को चुना गया है। नीचे दिया गया चित्र यह दर्शाता है कि सकल वार्षिक अनुसंधान लागतों को मांग वक्र के बीच दर्शाए गए क्षेत्र द्वारा मापा जाता है। यह आर्थिक कल्याण में कुल वृद्धि (कुल सरप्लस में परिवर्तन) को दर्शाता है और इसमें आपूर्ति में परिवर्तन के परिणामस्वरूप उत्पादक तथा उपभोक्ताओं के सरप्लस में होने वाले परिवर्तन शामिल हैं। उपभोक्ता अधिक लाभ की स्थिति में रहते हैं क्योंकि वे कम मूल्य पर अधिक उपभोग करने में सक्षम होते हैं। उत्पादकों और/अथवा उपभोक्ताओं के बीच लाभ का वितरण बाजार की संरचना तथा आपूर्ति वक्र में होने वाले परिवर्तन की दर पर निर्भर करता है।

प्रणाली में मूल आपूर्ति तथा मांग समीकरणों के बीजगणितीय फेरबदल से सूत्र व्युत्पन्न होते हैं तथा इनसे उत्पादक तथा उपभोक्ताओं में सरप्लस के वितरण और इसके साथ ही कुल सरप्लस का आकलन करना संभव होता है। कुल सरप्लस में परिवर्तन के आकलन के लिए निम्न सूत्र का उपयोग किया जाता है :

कुल सरप्लस में परिवर्तन $= P_0 Q_0 K (1+0.5Z\varepsilon)$

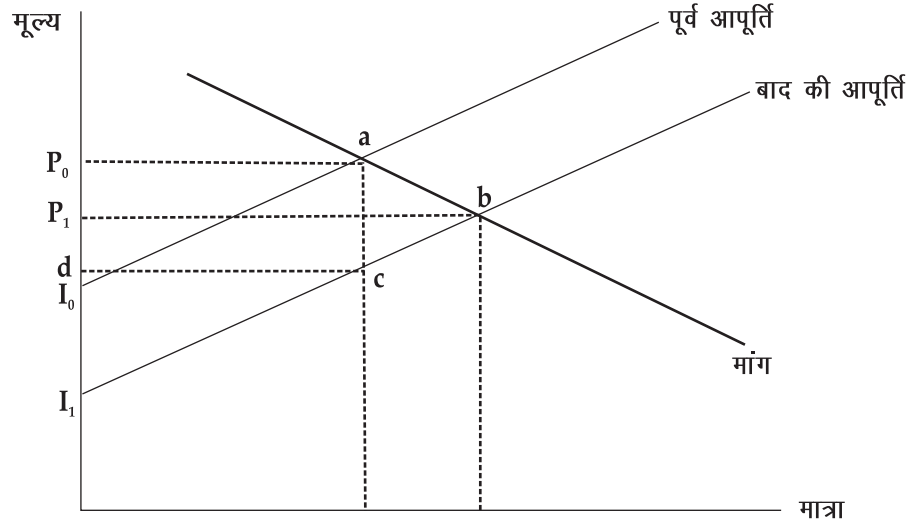

चित्र : कुल आर्थिक सरप्लस में परिवर्तन को मापना

यहां P_0 आधार मूल्य और Q_0 आपूर्त की गई मात्रा, K तकनीकी परिवर्तन के कारण आपूर्ति में बदलाव (उपज तथा उत्पादन परिवर्तनों की लागत से प्रत्यक्ष संबंधित), Z मूल्य में परिवर्तन तथा ε आपूर्ति का लोच हैं। इसलिए कुल आर्थिक सरप्लस की गणना करने में हमें बाजार मूल्यों तथा तकनीकी प्राचलों पर सूचना की आवश्यकता होती है।

आंकड़ों की आवश्यकता और स्रोत

आर्थिक सरप्लस के आकलन के लिए प्राचलों जैसे माँग और आपूर्ति लोच, उपज/लागत में परिवर्तन, अपनाए जाने की दर, उत्पादन तथा लाभ के आकलन के लिए मूल्य की आवश्यकता होती है। आकार तथा अर्थव्यवस्था (बंद अर्थव्यवस्था), आपूर्ति वक्रों में परिवर्तन तथा विकास और अनुकूलन वर्षों पर भी जानकारी की आवश्यकता होती है। प्रौद्योगिकी लाभों तथा चुनी हुई प्रमुख प्रौद्योगिकियों को अपनाए जाने की दरों से संबंधित आंकड़े उन संबंधित संस्थानों से प्राप्त किए गए थे जो प्रौद्योगिकी को व्यवहार में ला रहे थे और जहाँ ये उपलब्ध नहीं थे वहाँ राय का उपयोग किया गया।

महत्वपूर्ण प्रौद्योगिकियों पर बैंचमार्क आंकड़े भा.कृ.अनु.प. के संस्थानों को डाक द्वारा भेजी गई प्रश्नावली के माध्यम से संकलित किये गये। इन आंकड़ों के सत्यापन के लिए एक कार्यशाला आयोजित की गई। इस कार्यशाला में अर्थशास्त्रियों तथा भा.कृ.अनु.प. के विषय–वस्तु प्रभागों के विशेषज्ञों ने भाग लिया। प्रगति की समीक्षा करने के लिए दो बैठकें भी आयोजित की गईं। अंततः भा.कृ.अनु.प. प्रौद्योगिकी पर प्रभाव के अध्ययनों के परिणामों को एनआईएपी में आयोजित भा.कृ.अनु.प. प्रौद्योगिकियों के प्रभाव विषय पर आयोजित राष्ट्रीय कार्यशाला में साझा किया गया। इस कार्यशाला में सचिव डेयर व महानिदेशक, भा.कृ.अनु.प.; परिषद् के विभिन्न संभागों के उप महानिदेशकों तथा मुख्यालय के वरिष्ठ अधिकारियों, भा.कृ.अनु.प. संस्थानों के निदेशकों और वैज्ञानिकों ने भाग लिया था।

संदर्भ अवधि और मूल्य

चुनी हुई प्रौद्योगिकियों से होने वाले आर्थिक लाभों का मूल्याँकन दो दशकों की अवधि (2000–18) के लिए किया गया तथा उनका मूल्य निर्धारण वर्ष 2018–19 के बाजार मूल्य पर किया गया। जो प्रौद्योगिकियाँ बाद में जारी की गईं उनके अपेक्षित लाभ की जांच उनके अपनाए गए वर्ष से की गई।

कमियाँ

इस अध्ययन में आंकड़े तथा विश्लेषण संबंधी कुछ कमियाँ हैं। चूंकि प्रौद्योगिकी के विकास, रखरखाव तथा उसके प्रचार–प्रसार संबंधी आंकड़े उपलब्ध नहीं थे, अतः प्रौद्योगिकी से होने वाले निवल लाभों का आकलन नहीं किया जा सका और ये लाभ सकल लाभ हैं। आर्थिक लाभ के अतिरिक्त इन प्रौद्योगिकियों से पर्यावरणीय, सामाजिक कल्याण, पोषणिक आदि जैसे लाभ भी प्राप्त होते हैं। सूचना तथा समय की कमी के कारण इन आयामों पर विचार नहीं किया गया।

[1]एल्सटन, जे.एम., जी.डब्ल्यू. नॉर्टन और पीजी पार्डे. 1995 साइंस अंडर स्कारसिटी, प्रिंसिपल्स एंड प्रैक्टिस फॉर एग्रीकल्चरनल रिसर्च इवेल्यूएशन एंड प्रायरियोटी सैटिंग. कार्नल विश्वविद्यालय, प्रेस इथका और लंदन

भा.कृ.अनु.प.–राष्ट्रीय कृषि आर्थिकी एवम् नीति अनुसंधान संस्थान
(भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद्)
देव प्रकाश शास्त्री मार्ग, पूसा, नई दिल्ली–110 012, भारत
फोन : 91-11-25847628, 25848731, फैक्स : 91-11-25842684 ईमेल : director.niap@icar.gov.in
http: // www.niap.icar.gov.in